!!श्री!!

राम चरित्र मानुष

रामायण

2024

;kxh vf[ky'k

श्री राम चरित्र

cãkM fLFkr iFoh dk v'k lkdr] vo/k ;k v;k/;k e gh çFke eu"; eu fd mRifÙk gbA v;k/;k l;lo'kh eu jktok'k dk fuokl LFkku FkkA ftle 64 o o"kt e;knk i#"kkÙke Jh jkepUæ dk tUe gvkA lr rylhnkl th u jke jkT; dk o.ku dj dgk gA

o.kkJe fut&fut /kje] fujr on iFk ykx A

pyfg lnk ikogh l[kfg] ugh en 'kkd u jkx AA

;g og le; Fkk tc ge pØorh lekV Hkh Fk vkj txnx# HkhA rc ge on d mikld Hkh Fk vkj ofnd /keh Hkh vkj blh vk/kkj ij gh ge Þlkus fd fpfM;kß dgk tkrk FkkA rc ge ofnd lL—fr] ofnd lLdkj] ofnd vkpkj&fopkj] ofnd Hkfä vkj ofnd o.kkJe dk fu"Bk l ikyu djr FkA

,l gh ,d pdorh lekV jktk jke FkA bl iLrd e ge Jhjke d mu leLr fd;k dykik dk iBu djx] ftld dkj.k og vkt Hkh tutu d fi; g] vkn'k gA

;kxh vf[ky'k

lLFkkid

POSITIVE THOUGHT CENTER

!!श्री!!

राम चरित्र मानुष

रामायण

2024

POSITIVE THOUGHT CENTER

Email: positive.thought.center@gmail.com

Website:https://positivethoughtcenter.com

57A Mahalaxmi Nagar Indore-452010

!!श्री!!

राम चरित्र मानुष

रामायण

lokZf/kdkj lqjf{kr& ;kxh vf[kys'k

izFke laLdj.k& uवEcj 2024

ys[kd& ;kxh vf[kys'k

Vkbi& fgUnh QkUV

vkbZ,l,l,u uEcj& 8120&987&24

vkoj.k jpuk& ;kxh vf[kys'k

eksckby& 9827050009

Qksu& 0731&4370194

ewY;& Rs 201 /

izdk'kd& **POSITIVE THOUGHT CENTER**

lwpuk&bl iqLrd dk dksbZ Hkh Hkkx fdlh Hkh ek/;e bysDVªkfud] QksVksdkih] vkfM;ks ;k fofM;ks fjdkfMZx ;k fdlh Hkh :i esa izdk'kd ;k ys[kd dh vuqefr ds fcuk lEikfnr] gLrkarfjr ;k fdlh Hkh iz.kkyh esa laxzfgr ugha fd;k tkuk pkfg,A ;g vlo/kkfud gksxkA

çdk'kdh;

osn laLFkku vtesj ds laLFkkid Lokeh fo|kuUn ^fonsg* ds ekfld i= ^lfork* esa tuojh 1951 ls vxLr 1954 rd okYehfd&jfpr Þjkek;.kß ds vk/kkj ij ljy] lqcks/k Hkk"kk esa ,d ys[kekyk fy[kh xbZ FkhA mlesa çHkq Jhjke dh thou&xkFkk dks ekuoh; –f"Vdks.k ls çLrqr fd;k x;k FkkA

Jhjke ds thou ds lkFk tks vykSfdd rFkk vlEHko çrhr gksus okyh ?kVuk;sa tksM+ nh xbZ gSa] mudk ;qfä&;qä lek/kku djus dk Hkh lqUnj ç;Ru fd;k x;k FkkA

bl iqLrd ds ek/;e ls ge Lokeh fo|kun th ds –f"Vdks.k ls çHkq Jhjke dks ns[k ldrs gSaA ,slk gekjk fopkj gSA

;ksxh vf[kys'k

ifjp; Lokeh fo|kun ^fong* th

वेद! वर्तमान काल में भारत की रुचि के विषय बन गए हैं। अब आवश्यकता है, वेद को सरल, सहज और रोचक बनाने की और इस कार्य में अग्रणी रहे, स्वर्गीय श्री स्वामी विद्यानंद 'विदेह'।

कितने आश्चर्य की बात है कि जिस व्यक्ति को बीस वर्ष की आयु तक वेद और संस्कृत तो क्या, हिन्दी भी नहीं आती थी, जो केवल उर्दू, फारसी और अंग्रेजी जानते थे, उन्होंने लगन के कारण हिन्दी, संस्कृत सीखी और वेद पढ़े। फिर वेदों की ऐसी सरल व्याख्या की और अपनी वाणी, लेखनी द्वारा जन–जन तक ऐसे सरस रूप से पहुंचाया, जिसकी मिसाल ढूंढे नहीं मिल सकती। वह दिव्य महापुरुष वेद और संस्कृत के प्रचार में ऐसा जुटा कि उसने अपने शरीर की भी चिन्ता न की।

इस महापुरुष स्वामी विद्यानंद 'विदेह' का जन्म 15 नवम्बर 1899 को टप्पल (जिला अलीगढ़) में हुआ। उनका जन्म का नाम चैनसुखदास था। चौदह वर्ष की आयु में उनका विवाह गोमती देवी से हो गया। चैनसुखदास मैट्रिक तक ही शिक्षा पा सके। शिक्षा समाप्ति के उपरान्त कुछ समय तक चौनसुखदास ने अध्यापन कार्य किया। इसी दौरान उन्होंने क्रमशः हिन्दी और संस्कृत सीखी। **20 जनवरी, 1921** को चैनसुखदास को अजमेर से रेलवे पुलिस सुपरिंटेंडेंट के कार्यालय में स्थायी नौकरी मिली। इसी तारीख से उन्होंने वेदाध्ययन तथा वेद प्रचार शुरू किया। यह उनके तपोमय जीवन की शुरूआत थी। नित्य पांच घंटे वेदाध्ययन उनके जीवन का अंग बन गया। अजमेर में ही उन्होंने अपने जीवन का प्रथम वेदोपदेश किया जिसे सुनकर भारत के प्रसिद्ध विद्वान् प्रो. घीसूलाल ने कहा था, "वे वेद के एक आदर्श ि ाक्षक और प्रचारक बनेंगे। इस युवक के जीवन से वैदिक युग का पुनरागमन होगा।"

1935 में चैनसुखदास का स्थानांतरण पर्वतीय क्षेत्र आबू में हुआ। वहां भी उनका तपोजीवन जारी रहा। उनके वेद प्रचार को सांप्रदायिक रंग देकर उन्हें परेशान किया गया, परन्तु अपनी ईमानदारी, सावधानी तथा स्पष्टवादिता के कारण वे प्रत्येक आपत्ति से बचे रहे। यहीं उन्होंने अपना नाम 'विद्यानंद' किया जो उन पर सही चरितार्थ होता था।

आबू पर्वत पर विद्यानंद ने योग साधना शुरू की। वे अनुभव करने लगे कि आध्यात्मिक उपलब्धियों के बिना न जीवन निखर सकता है और न ही वेद के रहस्य समझ में आ सकते हैं। यहीं उनका परिचय स्वामी जपानंद जी से हुआ जो उनके योगगुरु साबित हुए।

12 फरवरी, 1935 को पदोन्नति के साथ विद्यानंद इन्दौर पहुंचे। वहां उनकी वेद साधना और भी कठोर हो गई। प्रातः तीन बजे से रात्रि दस बजे तक वे अपनी साधना की पूर्ति, कार्यालय के कामों, वेदाध्ययन और वेदोपदेशों में व्यस्त रहने लगे। 1936 ई. की श्रावण पूर्णिमा से उन्होंने वेदानुवाद आरम्भ किया।

2 जनवरी, 1942 को विद्यानंद का स्थानांतरण पुनः आबू पर्वतीय क्षेत्र में हो गया। आबू में उनका यह निवास उनके संन्यास की मानो पूर्व तैयारी ही थी। आबू में ही अपना कविता का उपनाम 'आनंद' बदलकर उन्होंने 'विदेह' किया। भारत के विभाजन ने 'विदेह' को अन्दर तक झकझोर डाला। अब उनका मन नौकरी से विमुख हो गया था। उन्हें देश के गद्दारों की करनी पर क्षोभ होता था। उनका मन उन्हें ऋषि दयानंद के दिव्य स्वप्नों को साकार करने और भारत को आर्य राष्ट्र बनाने को कहता था। उन्हें पूर्ण विश्वास था कि इस कार्य में उन्हें आर्य समाज का पूर्ण सहयोग प्राप्त होगा। **इसी से प्रेरित होकर उन्होंने 19 फरवरी 1948 को अजमेर में वेद–संस्थान की स्थापना की।**

वेद–संस्थान से ही 'विदेह' ने 'सविता' मासिक पत्रिका का प्रकाशन आरंभ किया। 'विदेह' ने इसके लिए लगातार तीस वर्षों तक सतत लेखन किया, जो उनकी साधना, तड़प और वेद व्याख्या शैली, आदि का जीता जागता नमूना रही। यह सुसाध युक्त व्यक्ति के वश का ही कार्य हो सकता है कि एक व्यक्ति एक पत्रिका के लिए लगभग पूरी सामग्री लगातार तीस वर्षों तक देता रहे।

विश्व कल्याण की अन्तः प्रेरणा से, 'विदेह' ने सेवानिवृत्ति की आयु से 12 वर्ष पूर्व ही अवकाश ग्रहणकर गृहस्थ जीवन त्यागकर 17 अगस्त 1949 को वानप्रस्थाश्रम में प्रवेश किया। तभी से मृत्यु–पर्यन्त 'विदेह' लगभग तीस वर्षों तक अनवरत रूप से वेद प्रचार–प्रसार तथा व्याख्या–लेखन में जुटे रहे। 'विदेह' ने **15 अगस्त, 1955** को बटाला (जिला गुरदासपुर, पंजाब) में स्वामी आत्मानंद सरस्वती से संन्यास की दीक्षा ली। श्री शिवराम चंढोक के प्रस्ताव पर दिल्ली में वेद–संस्थान की शाखा खोलने पर विचार किया गया और **14 जून 1959** को इसका उद्घाटन प्रसिद्ध पत्रकार, महाशय कृष्ण ने किया।

स्वामी विद्यानंद 'विदेह' ने विविध विषयों, यथा, वेदव्याख्या, योग, संस्कृत, जीवनी, ग्रंथटीका, नैतिकोत्थान, पद्य, स्वास्थ्य, आदि पर बेद–व्याख्या–ग्रन्थ(दोभाग) गायत्री,गायत्री–मन्त्र का अनुष्ठान, महामृत्युंज्य–मन्त्र का अनुष्ठान, सा्वभोम, आये साम्राज्य, वेदिक बाल–शिक्षा (दो भाग), वैदिक योग–पद्धति, सन्ध्या–योग, स्वस्तियाग, यज्ञोपवीत–रहस्य, संस्कृत–शिक्षा (दो भाग), सत्यनारायण की कथा, सत्संग–गीतावली दिव्य भावना आदि जैसे लगभग सौ ग्रंथ लिखे।वे चार बार विदेशों में भी वेदप्रचार यात्रा पर गए। उनके प्रवचनों से श्रोताओं के मानस में सोयी आर्यता के लिए कुछ कर दिखाने की प्रेरणा उठती थी, सोए हुए भी जागते थे।

उनकी सफलता और प्रसिद्धि का राज था उनका उदार व्यक्तित्व, वेद के मर्म को समझने की उनकी अद्‌भुत प्रतिभा, सहिष्णुता, प्रेम–भाव, गहन चिन्तन और स्वाध्याय। **5 मार्च 1978 को 78** वर्ष की आयु में आर्यसमाज, खालापार (सहारनपुर) में वेदप्रवचन करने के तत्काल बाद सभा के मंच पर ही रात्रि **10 : 10 बजे** उनका निधन हो गया। उनके अन्तिम शब्द थे 'मे प्राण उॅ भूः' अर्थात् 'मेरे प्राण! ईश्वर में मिल जाओ।'

योगी अखिलेश

POSITIVE THOUGHT CENTER

जम्बू द्वीपे भरत खंडे, भारत

ifjp; ckYehfd th

पृथ्वी के प्रथम मानव सूर्यपुत्र श्री मनु महाराज से हम मनुष्यों की उत्पत्ति हुई है। अतः हम मनुष्य के प्रथम पूर्वज महाराज मनु हैं। माता कौशल्या के कोख से जन्मे महाराज दशरथ के प्रथम पुत्र श्री राम महाराज मनु के 64 वें वंशज थे।

श्री राम के समय में ही ऋषि बाल्मीकि जी द्वारा "रामायण" कि रचना की गई थी। बाल्मीकि महर्षि ने राम के चरित्र का चित्रण किया, उन्होंने माता सीता को अपने आश्रम में स्थान दिया और श्री राम एवं माता सीता के पुत्र कुश और लव को ज्ञान दिया। महर्षि वाल्मीकि का नाम रत्नाकर था और उनका पालन जंगल में रहने वाली भील जाति में हुआ था। अतः परंपरा अनुसार वे अपने परिवार के पालन पोषण के लिए राहगीरों को लूटते थे एवं आवश्यकता अनुसार उनकी हत्या भी कर देते थे।

एक दिन जंगल से नारद मुनि निकल रहे थे। उन्हें देख रत्नाकर ने उन्हें पकड़ लिया। नारद मुनि ने उनसे सवाल किया कि तुम ऐसे पाप क्यूँ कर रहे हो ?

रत्नाकर ने जवाब दिया, "अपने एवं परिवार के जीवन व्यापन के लिए यह सब करता हूँ।"

तब नारद मुनि ने पूछा– "जिस परिवार के लिए तुम ये पाप कर रहे हो, क्या वह परिवार तुम्हारे पाप के फल का भी वहन करेगा"?

इस पर रत्नाकर ने कहा, "मेरा परिवार सदैव मेरे साथ खड़ा है"।

नारद मुनि ने कहा– एक बार उनसे पूछ लो !! "अगर वे हाँ कहेंगे तो मैं तुम्हे अपना सारा धन दे दूंगा"।

रत्नाकर ने जाकर अपने परिवार वालों से पूछा– लेकिन किसी ने भी इस बात की हामी नहीं भरी, कि वो उसके द्वारा किये गए किसी भी पाप के भगीदार हैं, साथी हैं। इस घटना से रत्नाकर को नारद मुनि द्वारा ज्ञान प्राप्त हुआ और उन्होंने मोह की आहुति देकर दुराचार के उस मार्ग को छोड़कर, तप का मार्ग चुना। अनेक वर्षो तक ध्यान एवं एवम तपस्या के फलस्वरूप उन्हें ज्ञान की प्राप्ति हुई और उन्होंने संस्कृ त भाषा में "रामायण" महाग्रन्थ की रचना की।

इस प्रकार जीवन की एक घटना से उपजे ज्ञान द्वारा, लोगों को लूटने वाले रत्नाकर माया एवं मोह का त्याग एक महान रचियता बनकर महर्षि वाल्मीकि बन गये।

यहाँ आपको विचार आएगा कि आपके परिवार वाले या आपके अन्य हितेषी तो हमेशा आपके साथ हैं। ऐसा विचार आना आपका मोह है। एक बार आप भी अपने परिवार से पूंछ कर देखिए। श्री राम कि कृपा से संभवतः आपको भी ज्ञान कि प्राप्ति हो जाएगी।

Hkfedk

सुहावनी बसंत ऋतु में एक दिन ऋषि वाल्मीकि पंचवटी के जंगल में घूमने निकले। ऋषि ने देखा पुष्पों से लदे एक वृक्ष पर क्रोंच पक्षियों का एक युगल (जोड़ा) परस्पर क्रीडा कर रहा है। सहसा पीछे से एक निषाद ने तीर छोड़ा, जिससे नर क्रौंच घायल होकर नीचे गिर पड़ा और भूमि पर गिरते ही उसका प्राणान्त हो गया। बेचारी मादा क्रोंच चीत्कार करती हुई, इधर–उधर उड़ने लगी। ऋषि वाल्मीकि के अंदर दया भाव उत्पन्न हो गया और अनायास ही उनके मुख से एक श्लोक प्रकट हुआ।

''मां निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।''

इस प्रकार ऋषि ने उस निषाद को समाज में कभी भी मान – प्रतिष्ठा प्राप्त न हो सकने का शाप दे डाला।

ऋषि ने दयाकुल होकर उस श्लोक को बार–बार पढ़ा। उन्हें वह भलोक बहुत प्रिय लगा। विचार किया, "इस श्लोक (छन्द) में राम का चारु चरित्र चित्रित करूँ"। ऋषि ने विचार किया "राम आदर्श पुरुष हैं, मर्यादा पुरुषोत्तम हैं, जितेन्द्रिय, धीर, शान्त और गम्भीर हैं। अनासक्त और निलेंप हैं"।

"जब महाराज दशरथ ने कहा– "राम! प्रातः तुम्हारा राज्याभिषेक होगा, और जब दूसरी प्रातः केकयी ने कहा– "राम, तुम्हें चौदह वर्ष के लिए वन जाना है।

दोनों ही अवसरों पर राम के आचरण में लेशमात्र भी अन्तर नहीं आया। ऐसे राजयोगी राम के चरित्र को काव्य बद्ध करने से निस्सन्देह मानव जाति का बड़ा उपकार होगा।" ऐसा विचार कर ऋषि बाल्मीकि ने चौबीस हजार श्लोकों से युक्त "रामायण" महांकांव्य की रचना की।

ऋषि वाल्मीकि राम के समकालीन थे। अतः राम–चरित्र से परिचित होने के लिए वाल्मीकी रामायण ही एकमात्र स्वतः–प्रमाण ग्रन्थ है।

fo"k; lwph

	dkM	ç"B
1	cky dkM	19
2	v;k/;k dkM	28
3	vj.; dkM	39
4	fdf"dU/kk dkM	54
5	lUnj dkM	61
6	ydk dkM	67
7	mRrj dkM	81
8	yodh'k dkM	85
9	Jhjke o'kkoyh	90

cky dkM

महाराज दशरथ के समय में कोशल राज्य आर्यावर्त मे ही नहीं अपितु विश्व के समस्त राज्यों में सबसे अधिक समृद्ध, सशक्त और सम्पन्न राज्य बन गया था। जिसकी राजधानी, अयोध्या नगरी थी। जिसे प्रारम्भ में प्रथम मनुष्य मनु ने बसाया था। यह नगरी सरयू नदी के किनारे–किनारे 48 कोस (60 मील) लम्बी और तीन कोस (4 मील) चौड़ी बसी हुई थी। नगरी तृण और घूल से सर्वथा रहित थी। उसमें जल और प्रकाश का प्रचुर प्रबन्ध था। राजधानी के भीतर बड़े–बड़े उद्यान थे। घरों के आंगन में फलदार वृक्ष और पुष्प वाटिकायें तथा यज्ञशालायें थीं। नगरी के चारों ओर दूर–दूर तक वनोपवन लहराते थे।

संसार में सबसे बड़ी और सुन्दरतम नगरी होने के साथ–साथ अयोध्या उस समय ज्ञान–विज्ञान तथा कला–कौशल का भी केन्द्र थी। समस्त भूमण्डल के मानव यहां आकर ज्ञान–विज्ञान, धर्म–संस्कृति और आचार–व्यवहार की शिक्षा प्राप्त किया करते थे। इसका श्रेय विशेषतः महाराज दशरथ को ही था। उनके आठ सचिव थे– धृष्टि, जयन्त, विजय, सुराष्ट्र, राष्ट्रवर्धन, अकोप, धर्मपाल तथा सुमन्त्र। महाऋषि वसिष्ठ राजगुरु और ऋषि वामदेव राजपुरोहित थे। चारों ओर के उपवनों में अनेक तपोधनी ऋषियों के आश्रम थे।

महाराज दशरथ जितने संयमी, सदाचारी और जितेन्द्रिय थे, उतने ही महत्त्वाकांक्षी भी थे। सिहासनारूढ़ होते समय केवल महारानी कौशल्या ही उनकी एक–मात्र भार्या थीं। उन्होंने संकल्प किया कि अश्वमेध यज्ञ किये बिना वे पुत्रेष्टि यज्ञ (गर्भाधान संस्कार) न करेंगे अर्थात अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न होने तक अखण्ड ब्रह्मचारी रहेंगे। अश्व का अर्थ है राष्ट्र और मेघ का अर्थ है संगम। एक सम्राट् के आधिपत्य में भूमण्डल के

समस्त राष्ट्रों या राज्यों के संगतिकरण अथवा समूहन को अश्वमेध कहते हैं। इस राज–आयोजन को अश्वमेध यज्ञ कहते हें। अश्वमेध अथवा विश्व–शासन प्रस्थापन कर चुकने पर अश्वमेघ प्रस्थापक राजा अपनी राजधानी में एक राज आयोजन करता है, जिसमे विश्व के सभी राजा उपस्थित होकर अश्वमेघकर्ता राजा को अपना महाराजा स्वीकार करते हैं और यज्ञ अग्नि मे आहुति देकर महाराज के प्रति अपनी निष्ठा कि शपथ ग्रहण करते हैं।

सिंहासनारूढ़ होने के कुछ ही वर्ष पश्चात महाराज दशरथ ने कतिपय विश्व समस्याओं तथा विश्वयुद्धों में अपने शौर्य और अपनी कुशल नीति तथा पटु राजनीतिकता से आश्चर्यजनक सफलतायें तथा विजय प्राप्त कीं, जिनसे महाराज की सभी ओर ख्याति, प्रसिद्धि तथा प्रतिष्ठा की वृद्धि हुई। समस्त भूमण्डल के राजा–महाराजा उनका सम्मान करते थे। उस समय की मर्यादा के अनुसार प्रत्येक पुरुष एक ही विवाह करता था और एक पत्नि व्रती ही रहता था।

उस समय की मर्यादा के अनुसार केवल अविवाहित राजकुमार ही राजकन्याओं के स्वयम्वरों में आमन्त्रित किए जाते थे। परन्तु उनकी अनुपम प्रतिभा तथा प्रतिष्ठा के कारण विवाहित तथा सपत्नीक होने पर भी महाराज दशरथ दो अन्य स्वयम्वरों में भी आमन्त्रित किये गये। महाराज उन स्वयम्वरों में सफल हुए, जिसके परिणामस्वरूप महाराज दशरथ त्रिपत्नीक होगये। काश! महाराज दशरथ एक पत्नीक हो जाने पर अन्य स्वयम्वरों में सम्मिलित होने से इनकार कर देते और दो अन्य भार्याओं का वरण न करते। परन्तु उन दिनों के रिवाज के अनुसार स्वयम्वर का निमन्त्रण प्राप्त होने पर स्वयम्वर में न जाना कायरता का लक्षण माना जाता था।

महाराज को दो बुराइयों में से एक का चुनाव करना अनिवार्य हो गया और उन्होंने अपयश पर त्रिपत्नीकता को वरणीयता दी।

लगभग 48 वर्ष की आयु में महाराज दशरथ अश्वमेध यज्ञ करने में सफल हुए। भूमण्डल के समस्त राजा अथवा उनके प्रतिनिधि अयोध्या में उपस्थित हुए और महाराज दशरथ को अपना सम्राट स्वीकार करके उनके प्रति राजनिष्ठा की शपथ ग्रहण की । प्रत्येक देश का राजदूत अयोध्या में रहने लगा और अयोध्या से सार्वभौम न्याय–शासन का सूत्र–संचालन होने लगा ।

अश्वमेध यज्ञ के पश्चात आदित्य ब्रह्मचारी महाराज दशरथ ने वसन्त ऋतु में पुत्रेष्टि यज्ञ (गर्भाधान संस्कार) किया। जिसके फलस्वरूप चैत्र शुक्ल नवमी को पुनर्वसु नक्षत्र में महारानी को ाल्या ने राम को, कैकेयी ने भरत को तथा सुमित्रा ने लक्ष्मण और शत्रुघ्न को जन्म दिया। चारों राजकुमारों का एक ही दिन थोड़े–थोड़े समय के अन्तर से जन्म हुआ। सबसे पूर्व राम, तत्पश्चात भरत, फिर लक्ष्मण और सबसे पीछे शत्रुघ्न जन्मे। लक्ष्मण और शत्रुघ्न जुड़वां पैदा हुए थे।

राजकुमारों के जन्म के उपलक्ष्य में बड़े–बड़े भव्य उत्सव किये गये और देश विदेशों के समस्त माण्डलिक राजाओं से महाराज दशरथ को बधाइयों के सन्देश प्राप्त हुए। जातकर्म, नामकरण आदि संस्कार यथा समय होते रहे और चारों राजकुमार चन्द्र के समान कलान्वित होते हुए सुन्दर, स्वच्छ, धार्मिक वातावरण में बड़े होने लगे।

सोलह वर्ष की आयु तक चारों राजकुमारों का शिक्षण महारानी को ाल्या और ऋषि वसिष्ठ के संरक्षण में हुआ। राम!! अतिशय सौम्य, सत्यमृदु भाषी, न्याय परायण, धर्मानुरागी, दयालु, विद्याप्रेमी, वृद्धोपसेवी, वीर, पराक्रमी, निर्लेप, अनोसक्त, जितेन्द्रिय, धीर, ईश–भक्त और मर्यादा पालक थे। भरत! अतिशय साधुस्वभाव, वीतराग, शान्तिप्रिय, मितभाषी

और मर्यादापालक थे। लक्ष्मण! उग्र, उद्धत, युद्धप्रीय, जितेन्द्रिय और कटुभाषी थे । शत्रुधन! उदासीनवृत्ति, निःस्पृह, सरलस्वभाव, वटस्थ और मृदुभाषी थे।

वशिष्ठ ऋषि ने विचार किया कि राम और लक्ष्मण को अस्त्र–शस्त्र की विशेष शिक्षा दिलाना अतिशय उपादेय होगा। राजकुमारों की सोलह वर्ष की आयु पूर्ण होने पर ऋषि वसिष्ठ ने ऋषि विश्वामित्र को अयोध्या आने के लिये आमन्त्रित किया ।

ऋषि विश्वामित्र के अयोध्या आगमन पर ऋषि वसिष्ठ ने महाराज दशरथ के सम्मुख यह प्रस्ताव उपस्थित किया, "राजकुमार राम और लक्ष्मण विशेषतया वीर हैं। हमारा अनुरोध है कि उन्हें युद्ध विज्ञान तथा वेज्ञानिक शस्त्रास्त्र का विशेष शिक्षण प्राप्त कराया जाये।''

अतः दोनों कुमारों को कुछ काल के लिये सिद्धाश्रम भेजा जाये।

महाराज ने विचार–विमर्ष के उपरान्त स्वीकृति दे दी और ऋषि विश्वामित्र दोनों कुमारों को अपने साथ सिद्धाश्रम ले गए।

विश्वामित्र राजऋषि से ब्रह्मषि बने थे। अतः वे अपने युग के सर्वोत्कृष्ट योद्धा और युद्धविज्ञान–विशारद थे। शस्त्र संचालन के भी वे अद्वितीय शिक्षक थे। उनके सुविशाल आश्रम का नाम सिद्धाश्रम था, जो एक गहन अरण्य (जंगल) में स्थित था। अयोध्या से सिद्धाश्रम जाते हुए ताड़का वन में, ऋषि विश्वामित्र तथा राजकुमारों की ताड़का से लड़ाई हुई। ताड़का मारी गयी और उसके पुत्र मारीच और सुबाहु जीवित बचकर भाग जाने में सफल हुए।

राम और लक्ष्मण ने सिद्धाश्रम में बारह वर्ष निवास किया और विश्वामित्र ऋषि ने उन्हें निम्नलिखित 72 शस्त्रास्त्रों का ज्ञान दिया एवं अभ्यास कराया।

ये इस प्रकार थे–

1.दिव्यास्त्र, 2.दण्डचक्र, 3.धर्मचक्र, 4.कालचक्र, 5.विष्णुचक्र, 6.इन्द्रचक्र, 7.वज्ञास्त्र, 8.शिवशूल, 9. ब्रह्म शिर, 10.एषीकास्त्र, 11. ब्रह्मास्त्र, 12. कौमोदकी, 13. शिखरी, 14.धर्मपाश, 15.वरुणपाश, 16.शुष्काशनि, 17. आद्रशिनि, 18.पिनाकास्त्र, 19.नारायणाम्तेयास्त्र, 20.शिखराम्नेयास्त्र, 21. मथनवायवास्त्र, 22.असिरत्न, 23. हयशिरास्त्र, 24.क्रौंचास्त्र, 25.कंकाल, 26.मूसल, 27.कपाल, 28.किकिणी, 29.वैद्याधरास्त्र, 30.गन्धर्वास्त्र, 31. मोहनास्त्र, 32 .सौम्यास्त्र, 33.प्रस्वापनास्त्र, 34. प्रशमनास्त्र, 35. सौम्यवर्षणास्त्र, 36. पेशाचास्त्र, 37.सोमनास्त्र, 38.मायास्त्र, 39.सोमास्त्र, 40.प्रतिहारतरास्त्र, 41.लक्ष्यास्त्र,. 42. अलक्ष्यास्त्र, 43. हढनाभास्त्र, 44. सुनाभास्त्र, 45. दशाक्षास्त्र, 46. शतवक्रास्त्र, 47. दशशीर्षास्त्र, 48. शतोदरास्त्र, 49.निष्कल्यस्त्र, 50.सर्पास्त्र, 51.वरुणास्त्र, 52 शोषणास्त्र, 53.सनन्तापनास्त्र, 54.विलापनास्त्र, 55.मदलास्त्र, 56.तामसास्त्र, 57. सत्यास्त्र, 58.सौरास्त्र, 59.सूर्यास्त्र, 60.पराडझ सुखास्त्र, 61. अवाडमुखास्त्र, 62.पद्मनाभास्त्र, 63 महानाभास्त्र, 64.दुन्दुनाभास्त्र, 65. ज्योतिषास्त्र, 66.नेराश्यास्त्र, 67.विमलास्त्र, 68.विनिद्रास्त्र, 69. शुचिबाहु–अस्त्र, 70.आवरणास्त्र, 71.विधृमास्त्र, 72..पन्थानास्त्र ।

आयुध विज्ञान का पूर्ण पाण्डित्य सम्पादन करके राम व लक्ष्मण सिद्धाश्रम से अयोध्या के लिये प्रस्थान करने वाले ही थे कि ऋषि विश्वामित्र को मिथिला में सीता–स्वयंम्वर की सूचना मिली। ऋषि विश्वामित्र ने दोनों कुमारों को साथ लेकर मिथिला के लिये प्रस्थान किया। मिथिला जाते हुए मार्ग में गौतम ऋषि आश्रम आया। ऋषि विश्वामिन्र ने राम को बताया कि "एक बार ऋषि गौतम की अनुपस्थिति में राजा इन्द्र गौतम आश्रम चले आये। कुछ देर आश्रम में रति–विहार करके, इन्द्र आश्रम से चले गये। गौतम ने अपने आश्रम को लौटते समय इन्द्र को आश्रम

से बाहर निकलते हुए देखा। गौतम सन्देहवृत्ति के व्यक्ति थे। उन्हें लगा कि इन्द्र उनकी अनुपस्थिति में उनकी भार्या अहिल्या से मिलकर जा रहा है। इस पर गौतम अहिल्या को त्यागकर एक निकटवर्ती आश्रम में जाकर पृथक रहने लगे। देवी अहिल्या वर्षों से गौतमाश्रम में अकेली रह रही हैं।"

तीनों गौतम आश्रम में प्रविष्ट हुए और राम व लक्ष्मण ने देवी अहिल्या के चरणों पर सिर रखकर प्रणाम किया। इन तीनों से मिलने के लिये ऋषि गौतम दौड़े हुए वहां आये। ऋषि विश्वामित्र और राम ने अहिल्या व ऋषि गौतम का परस्पर का मनमुटाव दूर किया और दोनों फिर गौतम आश्रम में बड़े प्रेम के साथ एक जगह रहने लगे ।

गौतम व अहिल्या ने विश्वामित्र, राम और लक्ष्मण का बड़े प्रेम से आतिथ्य किया। तदपरान्त तीनों मिथिला को चल पड़े।

मिथिला के महाराजा जनक ने ऋषि का बड़ा सत्कारपूर्ण स्वागत किया। ऋषि ने महाराजा जनक को दोनों राजकुमारों से परिचय कराया। ज्येष्ठ बंधु साथ होने के कारण लक्ष्मण ने स्वयम्वर में भाग लेना उचित नहीं समझा। शिव–धनुष के दो टुकड़े करके राम ने स्वयम्वर की शर्ते पूरी की और सीता जी ने परम हर्षित होकर श्रीराम के गले में वरमाला पहनाई। स्वयम्वर के समय रांम 28 वर्ष के थे और सीता 18 वर्ष की।

'सीता' शब्द का अर्थ है हल का फाला। महाराज जनक खेती किया करते थे और स्वयं हल भी चलाया करते थे। प्रत्येक फसल में भूमि में हल चलाने से पूर्व, वे सीता यज्ञ किया करते थे। सीता यज्ञ महाराज को ऐसा प्रिय था कि उन्होंने अपनी ज्येष्ठा पुत्री का नाम भी सीता रख दिया था। महाराज जनक के दो पुत्रियां थीं, सीता तथा उर्मिला। जनक महाराज के कनिष्ठ बन्धु, कुशध्वज की भी दो पुत्रियां थीं, माण्डवी तथा श्रुतकीर्ति । महाराज जनक की इच्छानुसार ऋषि विश्वामित्र ने एक

विशेष दूत के साथ महाराज दशरथ को एक निजी पत्र भेजा, जिसमें स्वयम्वर की सूचना देते हुए महाराज से अनुरोध किया गया, कि वे भरत, शत्रुघ्न तथा विशिष्ट परिजनों– सहित अवसरोचित सेना व बरात लेकर शीघ्र मिथिला नगरी पधारें।

महाराजा दशरथ ने पत्र पाते ही पूर्ण सज्जा के साथ मिथिला को यथा शीघ्र प्रस्थान किया। साथ ही अपने सम्बन्धी राजाओं के पास विशेष दूतों द्वारा सन्देश भेजा कि वे शीघ्र मिथिला पहुंच जायें। अन्यान्य राजाओं के अतिरिक्त भरत के मामा युधाजित भी मिथिला पहुंच गये।

जनकजी ने दशरथजी के प्रति यह इच्छा व्यक्त की कि राजकुमार राम, लक्ष्मण, भरत व शत्रुध्न का विवाह क्रमशः राजकुमारी सीता, उर्मिला, माण्डवी तथा श्रुतकीर्ति के साथ सम्पन्न किया जाये। दशरथ के सहमत हो जाने पर चारों राजकुमारों तथा चारों राजकुमारियों का विवाह संस्कार एक साथ सम्पन्न किया गया।

विवाहोपरान्त अयोध्या को आते हुए मार्ग में ऋषि परशुराम से भेंट हुई और उन्होंने अपने वैष्णव धनुष से राम की परीक्षा ली। जिससे परशुराम अत्यधिक संतुष्ट हुए। कुछ दिन अयोध्या में विश्राम कर महाराज युधाजित राजकुमार भरत व शत्रुघ्न और उनकी वधुओं सहित अपनी राजधानी को लौट गये।

भरत और शत्रुघ्न में परस्पर उतना ही प्रेम था, जितना राम और लक्ष्मण में। जहां भरत जाते थे, वहीं शत्रुघ्न भी जाते थे।

महाराजा दशरथ का सम्पूर्ण जीवन संघर्षों और संग्रामों में व्यतीत हुआ था। वे अब 76 वर्ष के हो गये थे। एक दिन उन्हें सहसा विचार आया कि अपने सर्वतः सुयोग्य, ज्येष्ठ पुत्र, राम को युवराज बनाकर वे अपना शेष जीवन शान्ति के साथ व्यतीत करें। उस समय की प्रथा के अनुसार

कोई भी सामान्य राजा, अपने ज्येष्ठ पुत्र को युवराज बना सकता था। परंतु महाराजा दशरथ सामान्य राजा न थे, सम्राट थे। अतः राम को युवराज बनाने के लिये अपने माण्डलिक राजाओं की सहमति प्राप्त करना आवश्यक था ।

एक नियत तिथि पर समस्त माण्डलिक राजा या उनके प्रतिनिधि अंतर्राष्ट्रीय राजधानी, अयोध्या में एकत्रित हुए। विश्वसंसद् में राजप्रमुख की प्रतिष्ठिति (हैसियत) से स्वयं महाराजा दशरथ ने, राम को युवराज बनाने का प्रस्ताव उपस्थित किया, जिसे विश्वसंसद ने स्वीकार किया। इस प्रस्ताव की सर्वसम्मत स्वीकृति पर अपना हर्ष प्रकट करते हुए एक प्रतिनिधि ने कहा–

1–विश्वमण्डल में राम सर्वेश्रेष्ठ पुरुष हैं।

2–राम अतिशय शालीन, संयमी और मर्यादापालक हैं।

3–राम सदा–सर्वत्र प्रजाजनों से कुशल पूछते हैं ओर उनके स्वास्थ्य, परिवार, श्राचार, सन्ध्या, अग्निहोत्र, वेदाध्ययन आदि के विषय में प्रश्न करते हैं।

4–मार्ग में जाते हुए, राम वृद्धों, देवियों और रोगियों के लिये स्वयं मार्ग छोड़कर चलते हैं ।

5–राम सुशील, सोम्य, मृदु, मितभाषी, जितेन्द्रिय, थीर, गम्भीर, धर्मात्मा, न्यायकारी, वीर, पराक्रमी और हंसमुख हैं।

6–राम प्रीतिपात्र, उदार, क्षमाशील, निव्यसना, निविलास और सर्वप्रिय, लोकप्रिय हैं।

विश्वसंसद को धन्यवाद देते हुए महाराजा दशरथ ने कहा, "कितना हर्ष का अवसर है। युवराज के लिये मेरे ज्येष्ठ प्रिय पुत्र का आपके द्वारा चुना जाना मेरे लिये सौभाग्य का विषय है।"

v;k/;k dkM

राम के युवराज चुने जाने पर विश्वसंसद के समस्त राजसदस्यों ने महाराजा दशरथ को यह प्रेरणा की कि राम का राज्याभिषेक अगली प्रातः ही सम्पन्न कर दिया जाये, ताकि उन्हें अपनी राजधानियों से अधिक अनुपस्थित न रहना पढ़े और दूसरी बार अयोध्या आने में उन्हें पुनरू अपनी राजधानियों को न छोड़ना पड़े।

महाराजा दशरथ ने इस आग्रह को सहर्ष स्वीकार कर लिया। महर्षि वशिष्ठ सभी तैयारियों में लग गये। राजमहलों, दरबार और राजधानी में सजावटें होने लगीं।

महाराजा दशरथ ने राम को बुलाया और आदेश दिया, "राम, कल प्रातः तुम्हारा राज्याभिषेक है। तुम और सीता उपवास करो और रात्रि में कुश शय्या पर शयन करो। कल प्रातः गायत्री–जाप तथा अग्निहोत्र से निवृत्त होकर तुम्हें नियत समय पर दरबार में उपस्थित होना है। "तथास्तु" कहकर राम अपने महल को चले गये।

अगली प्रातः जब मन्थरा ने कैकेयी के महल में प्रवेश किया, तो कैकेयी अपने महल की सजावट का निरीक्षण करती हुई अन्तः–प्रांगण में इधर–उधर ठहल रही थी।

मन्थरा ने ककेयी को प्रणाम करके, अपने मनोभावों को छिपाते हुए कहा, "राम के युवराज्य के लिये आपको बड़ा उत्साह प्रतीत हो रहा है।" कैकेयी ने मुस्कराते हुए एक बहुमूल्य हार पुरस्कार स्वरूप मन्थरा को दिया ।

हार महारानी को लोटाते हुए मन्थरा बोली– "महारानी, राम के युवराज में मै आपका बड़ा अहित देखती हूं। राम के युवराज से कौशल्या का सौभाग्योदय होगा और आपका दुर्भाग्य ।

कैकेयी बोली, "चुप, मन्थरा!! राम में या भरत में, मैं कोई अन्तर नहीं समझती। अतः मै प्रसन्न हूं कि राजा दशरथ राम का राज्याभिषेक कर रहे हैं।"

मंथरा ने कहा– "आपकी यह प्रसन्नता अनिष्टसूचक है, महारानी"।

"इस शुभावसर पर मैं ऐसी बातें नहीं सुनना चाहती, मन्थरा। राम मुझे भरत से भी अधिक प्यारा है। राम कौशल्या दीदी से भी अधिक मेरा मान करता है। भरत राम को प्राणों से प्यारा है। राम मानवता का पुष्प, धर्म का अवतार और समस्त मानव प्रजा का दुलारा है।"

"आपकी हितकामना मुझे प्रेरित करती है कि समय रहते में आपको चेता दूं।" मंथरा ने पुनः कहा

मंथरा तुम क्या बकवास कर रही हो? कहते हुए कैकेयी ने अपने विशिष्ट भवन में प्रवेश किया।

मंथरा पीछे–पीछे चल रही थी।

महारानी कैकयी एक आरामकुर्सी पर आसीन होकर मंथरा को सम्बोधन करते हुए बोलीं– मन्थरा, बताओ तुम्हें आज किस अनिष्ट की आशंका ने व्यथित किया हुआ है?

महारानी, राम के राजा बनने पर आपकी वह गौरवपूर्ण स्थिति नहीं रह सकती जो अब है। मंथरा ने कहा

कैकयी ने कुछ सोचते हुए कहा– "मन्थरा, परन्तु किया भी क्या जा सकता है?

पुनः कुछ सोचकर फिर कहा– विश्वसंसद ने सर्वसम्मति से राम को युवराज स्वीकार किया है। चारों राजकुमारों में ज्येष्ठ होने से, वैसे भी राम ही राजा बनने चाहियें।"

"महारानी, आपको याद है!!

क्या!!

जब देवासुर–संग्राम में जब शम्बासुर ने महाराजा दशरथ को घायल करके मूर्छित कर दिया था, तब आपने उन्हें रणक्षेत्र से सुरक्षित बचाकर उनकी प्राण रक्षा की थी? मंथरा ने कहा

अरे, मंथरा, उसका इस समय क्या मतलब?

महारानी!! उस समय महाराजा ने प्रसन्न होकर आपसे कोई भी दो वर मांगने को कहा था। मंथरा ने उत्साहित होकर कहा

हां मंथरा कहा था!!

देवी आपने उस समय कोई भी वर नहीं मांगा था। आपने दोनों वरों को धरोहर रूप में रखने के लिए कहा था और महारानी, महाराजा ने उन दो वरों को कभी भी मांग लेने का आपको अधिकार दिया था। मंथरा ने कहा

हां दिया था मंथरा, तो क्या??

महारानी जी, अब मौका है, आप उन दो वरों को महाराजा से मांग लें। मंथरा ने कहा

महारानी बोलीं– समझ गई मंथरा, परंतु दो वर किस प्रकार मांगे जायें?

मंथरा ने समझाकर कहा– पहला राम को चौदह वर्ष के लिये वनवास और दूसरा भरत को चौदह वर्ष के लिये राजसिंहासन मांग लीजिये।

महारानी कुछ विचार कर बोली– मंथरा, इससे तो समस्या का पूर्ण समाधान न होगा। क्यों न राम को सदा के लिये वनवास और भरत को सदा के लिये राजसिहासन मांग लें।

मंथरा ने कहा– नहीं, नहीं, महारानीजी!! ऐसा करने से समस्त राजा बिगड़ उठेंगे। स्वयं कोशल राज्य की प्रजा और समस्त मंत्री मंडल परिशद आपका विरोध करने लगेगी।

महारानी ने पूँछा– चौदह वर्ष कि अवधि मे ऐसा क्या होगा? क्या उसमे विरोध नहीं होगा?

मंथरा कुटिलता से बोली– होगा महारानी, परन्तु कम होगा। चौदह वर्ष के बाद राम के पुनरागमन की आशा से विरोध इतना तीब्र रूप धारण न करेगा और महाराज को भी कम वेदना होगी ।

मंथरा लेकिन फिर चौदह वर्ष के बाद क्या होगा? क्या पुनः राम को राजा बना दिया जाएगा?

कूटनीतिक मुस्कराहुट के साथ मंथरा ने कहा– चौदह वर्ष के दीर्घ काल में पुत्र भरत के पैर भली प्रकार जम जायेंगे। अपने मोहक शील–स्वभाव और प्रजाहितकारी कार्यों तथा उदार शासन से प्रजा का स्नेह पूर्णतया प्राप्तकर वह उनके हृदय को जीत लेगे। फिर चौदह वर्ष बाद जब राम लोटेंगे, तो भरत की जड़ें गहरी जमी हुई पायेंगे और प्रजा को सन्तुष्ट देख कर फिर यह बात ही न उठेगी।"

अभी कैकेयी और मन्थरा का वार्तालाप समाप्त हुआ ही था कि महाराजा दथरथ ने केकयी के महल में प्रवेश किया।

कैकेयी बोली– राजन! देवासुर–संग्राम में जब शंबासुर ने आपको घायल करके मूर्छित कर दिया था, तब मैंने आपको रणक्षेत्र से सुरक्षित बचाकर आपकी प्राणरक्षा की थी।

कैकयी ने कुछ रूक कर कहा– उस समय के मेरे दो वर आपके पास सुरक्षित हैं। उन दोनों वरों को में आज मांगना चाहती हूं।"

महाराज बोले– हां मांगो प्रिये!! राम के युवराज बनने के उपलक्ष में, मै सहर्ष प्रदान करूंगा।

कैकेयी बोली– मै मांगती हूं कि इस अवसर पर भरत का राज्याभिषेक हो और राम आज ही यति–वेश में चौदह वर्ष के लिये वन जाये।

महाराज दशरथ गंभीर होकर बोले– विनोद न करो प्रिये। जो मांगना है शीघ्र मांगो।

राजन! मै विनोद नहीं कर रही, मैं यही दो वर चाहती हूं। महारानी ने कहा।

देवी मेरा, भरत का और अपना अहित न करो। राम के वन जाने पर मै प्राण त्याग दूंगा। भरत राजगद्दी स्वीकार न करेगा। अनेक देशों से आये राजा– महाराजा व प्रतिनिधि क्या कहेंगे? महाराज अत्यंत गंभीर अवस्था में बोले।

कैकेयी बोली– महाराज!! तो क्या आप अपने वचन को तोड़ते हैं ?

दशरथ जी ने कहा, देवि भरत का राज्याभिषेक करवालो, परन्तु राम को अयोध्या में ही रहने दो।

कैकेयी बोली– यदि आप अपने वचन और अपनी प्रतिज्ञा के प्रति सच्चे हैं, तो आपको मेरे दोनों ही वरों को स्वीकार करना होगा।

महाराज व्यथित होकर गिर गये और मूर्छित हो गये।

उधर महामन्त्री सुमन्त्र ने कैकयी के महल में प्रवेश किया। कैकयी को अभिवादन कर सुमन्त्र बोले, महारानी राम के युवराज–समारोह के लिये दरबार में सब महाराज के शुभागमन की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

कैकेयी बोली– महाराज, अस्वस्थ हो गये हैं। आप जाइये और राम को अविलम्ब यहां ले आइये।

सुमन्त्र श्रीराम के निवास में पहुंचे और उन्हें अभिवादन कर बोले– महारानी कैकेयी ने आपको अपने महल में अविलम्ब याद किया है। महाराज भी वहीं हैं।

सीता से विदा लेकर राम सुमन्त्र–सहित केकेयी के महल में पहुंचे और कैकयी को अभिवादन करके पूंछा– क्या आज्ञा है, माता?

कैकेयी ने तत्काल जवाब दिया कि देवासुर–संग्राम के दो धरोहर रूप वरदान, आज महाराज से मैने मांगे तो महाराज व्यथित होकर वहां लेटे हुए हैं।

राम मे पूँछा– क्या मै उन वरों की पूर्ति में सहायक हो सकता हूं माता?

कैकेयी बोली– मै चाहती हूं कि राम चौदह वर्ष के लिये जटाधारी रूप में वन में निवास करें और भरत चौदह वर्ष के लिये अयोध्या साम्राज्य के सिहासन को सुशोभित करे।

राम ने प्रसन्नतापूर्वक उत्तर दिया– जो आज्ञा, माता!! महाराज का वचन रखने के लिये मै अभी जटाधारी होकर, सीधा वन को चला जाता हूं। माता!! आप रोष न करें, आप प्रसन्न होइये, मै राज्य, धन, ऐश्वर्य का गुलाम नहीं और न ही मेरा संसार में कोई अनुराग है।

महाराज दशरथ दोनों का वार्तालाप सुनते हुए शांत एवं उदास बैठे थे।

महाराज दशरथ और कैकेयी को अभिवादन कर, राम कौशल्या के महल की ओर चले और सुमन्त्र दरबार की ओर चले गये।

कौशल्या यज्ञ से निवृत्त हुई ही थीं कि लक्ष्मण सहित राम ने महल में प्रवेश किया।

माता को अभिवादन कर राम ने उन्हें सारा हाल कह सुनाया ।

तो तुमने क्या निश्चय किया, राम ? कौशल्या ने राम से पूंछा।

राम ने खुश होकर कहा– माता–पिता की इच्छा का सहर्ष पालन करना संतान का परम धर्म है। जहां धर्म के पालन की भावना है, वहां निश्चय करने का प्रश्न ही नहीं उठता।

कौशल्या ने कहा– तुम्हारे पिताश्री ने तो तुम्हें वन जाने के लिये कहा ही नहीं है।

राम ने कहा– पिताश्री!! एक तरफ मेरे मोह से विमोहित हैं, तो दूसरी ओर वचन भंग के दोष से।

कौशल्या ने कहा– मैं तुम्हारी जननी हूं। मैं तुम्हें आदेश दे सकती हूं कि तुम वन मत जाओ।

राम बोले– माता, ये कैसे संभव है कि मेरी धर्मशील माता, मुझे कोई ऐसा आदेश देंगी, जिससे मेरे धर्मात्मा पिता के दिए गए वचनो को पूरा करने में कोई बाधा पड़ती हो।

कौशल्या बोली– राम तुम्हारे युवराज का निर्णय तो विश्वसंसद ने किया है। महाराज को व्यक्तिगत निर्णय करने का अधिकार भी तो नहीं है।

राम बोले– माता, इस समस्या का समाधान मैंने सोच लिया है। अब आप मुझे अनुमति दें, क्योंकि माता कैकयी की इच्छा है कि मै आज ही वन को प्रस्थान करूं।

कौशल्या बोली– मै भी तुम्हारे साथ चलती हूं राम।

राम ने कहा– नहीं माता, ऐसा नहीं हो सकता? आपके पति के प्रति अपने कर्तव्य हैं और उनकी सेवा से अपने को वंचित करना आपके लिये अशोभनीय होगा। आश्रुओं के प्रवाह में अपने धर्म को प्रवाहित मत कीजिये।

कौशल्या आखों में आंसू भरकर बोली– अच्छा जाओ!! मेरे राम, धर्म तुम्हारी सदैव रक्षा करे! धर्माधार भगवान तुम्हारी रक्षा करें! रघुकुलाचार तुम्हारी रक्षा करें! गुरुजनों के आशीर्वाद तुम्हारी रक्षा करें! प्रजाजनों की शुभ कामनायें तुम्हारी रक्षा करें! सब प्राणियों का प्रेम तुम्हारी रक्षा करे!!

माता कौशल्या को प्रणाम कर लक्ष्मण सहित राम सीता से विदा लेने के लिये चले और कौसल्या खड़ी–खड़ी ईश्वर से राम के लिये प्रार्थना करने लगी।

अपने महल में आकर राम ने सीता को सब समाचार सुनाया और कहा, सीते!! माता कैकयी की इच्छा है कि मै आज ही वन गमन करूं।

सीता बोलीं– हे आर्य!! मै भी आपके साथ चलने के लिये तैयार हुई जाती हूं।

राम ने कहा– नहीं आर्ये, तुम्हारा मेरे साथ चलना ठीक नहीं। वनों और पर्वतों का निवास बड़ा ही दुर्गम तथा असुविधापूर्ण होगा।

सीता ने दृढ़ता के साथ उत्तर दिया– हे आर्य! मै उन वनों में अवश्य जाऊंगी, जहां मनुष्य भी जाते घबराते हैं, जहां नाना प्रकार के सिंह आदि हिंसक पशु विचरते हैं।

मै उस वन में सुख से रहूँगी, ऐसे ही जैसे पिता के महलों में रहती थी। मै किसी बात की चिन्ता और विचार नहीं करूंगी। कोई विचार आयेगा भी तो केवल आपकी सेवा का। आपकी सेवा और संयमपूर्ण वन्य जीवन। जहां विभिन्न फलों एवं मूलों का भोजन, सुगन्धित पुष्पों और फलों से सुव्यवस्थित हमारी कुटिया होगी, वहां आपका सहचर्य ही मेरा स्वर्ग होगा। मेरे द्वारा आपको कोई दुःख या असुविधा नहीं होगी।

मै आपके आगे–आगे आपका पथ प्रशस्त करती चलंगी। आपको खिलाकर ही स्वयं भोजन करूंगी। वन में सरित, सरोवरों का आनन्द लूंगी।

राम ने कहा, अच्छा तो आप भी शीघ्र चलने की व्यवस्था करें।

तभी लक्ष्मण कि आवाज आई भ्राता मै भी आपके साथ वनवास के लिये सर्वथा तैयार हूँ।

राम बोले– लक्ष्मण तुम्हारे चलने से माता सुमित्रा को बड़ी वेदना होगी?

लक्ष्मण ने कहा– नहीं भ्राता, मुझे विश्वास है, मेरी जननी को इससे हार्दिक आनन्द होगा।

राम बोले– यदि ऐसा हो तो तुम भी सहर्ष चलो वीर।

अपने सब राजसी–वस्त्र तथा चिह्न उतारकर साधारण वस्त्र धारण करके तीनों महारानी कैकयी के महल में पहुंचे और तीनों नतमस्तक महाराजा दशरथ के अभिमुख खड़े हो गये। कुछ ही क्षणों में कौशल्या तथा सुमित्रा भी वहां आ पहुंचीं।

व्यथित महाराज दशरथ ने कहा– हे राम!! तुम मुझे बन्दी बना दो और राज्य करो। ऐसा करने से न मेरी प्रतिज्ञा भंग होगी, न तुम्हारे साथ अन्याय होगा।

राम ने कहा– ऐसा असंभव है पिताश्री।

महाराज बोले– तो क्या तुम मुझे सदा के लिये कलंकित करना चाहते हो?

तब राम ने कहा– महाराज, हमारे सूर्यवंशी पूर्वजों ने हमेशा अपने वचनों का पालन किया है। अतः उनकी भांति हम दोनों की भी अमिट कीर्ति होगी। आपकी प्रतिज्ञा के पालन के लिये और मेरी मर्यादा के लिये मै

वन गमन अवश्य करूंगा। महाराज आपकी आंखों में गहन विषाद की रेखा उचित नहीं। कृपया आप विषाद को छोड़ें, विषाद क्षत्रिय को शोभा नहीं देता।

सुमन्त्र तथा वसिष्ठ के द्वारा कैकयी को समझाने के सब प्रयत्न व्यर्थ गए। सीता तथा लक्ष्मण ने अपने परिधान बदल कर वन वेष धारण किये और राम के साथ आ खड़े हुए।

राम कैकयी से बोले– माता, आपकी इच्छानुसार में चौदह वर्ष तक यति–धर्म का पूर्णतः पालन करूंगा। वन में निवास करूंगा और नगर या ग्राम में प्रवेश नहीं करूंगा। तभी सुमन्त्र ने कैकयी को सूचित किया, आपके आदेशानुसार तीव्र अश्वों से युक्त वह उत्तम रथ द्वार पर उपस्थित हो गया है।

पिता, माताओं तथा ऋषि वसिष्ठ को प्रणाम कर सीता, राम और लक्ष्मण बाहर जाने लगे।

सीता को छाती से लगा कर कौशल्या बोली– "सीते, कठिन और कठोर प्रसंग आने पर भी पति की निन्दा न करना।

सुमित्रा ने लक्ष्मण को सीने से लगा कर कहा– "पुत्र, राम को ज्येष्ठ भ्राता ही नहीं, पिता और सीता को अपनी मां की जगह समझना। वन ही अब तुम्हारी अयोध्या है। वत्स, अच्छी तरह जाना।"

सीता रथ पर चढ़ी, फिर राम और फिर लक्ष्मण। सुमन्त्र ने रथ आगे बढ़ाया। विशाल जनसमूह ने चारों ओर से रथ को घेर लिया।

असंख्य कण्ठों से एक साथ ध्वनित हुआ, "विश्वसंसद का निर्णय नहीं बदला जा सकता।

सर्वप्रिय राम को युवराज से कोई वंचित नहीं कर सकता। हम इस बात को नहीं मानते हैं।

तब रथ पर बैठे राम खड़े हुए और दोनों हाथों को उठाकर सबको शांत करते हुए कहा, "आपने और विश्वसंसद् ने साम्राज्य का युवराज मुझे प्रदान कर दिया। अब मैं चौदह वर्ष के लिये वन विहारार्थ जाता हूँ और आदेश देता हूं कि मेरी अनुपस्थिति में भरत मेरा स्थानापन्न होकर मेरे साम्राज्य का संचालन करेगा। आप मेरे समान ही भरत को समझें और कोई ऐसा कार्य न करें जिससे गृहकलह उत्पन्न हो और साम्राज्य को क्षति पहुंचे।"

राम अपने स्थान पर आ बेठे और सुमन्त्र ने रथ को तीव्र गति से दोड़ा दिया।

सब अपने–अपने घरों को चले गये और दशरथ कैकेयी के महल से कौशल्या के महल में जाकर शय्या पर पड़ गये। सम्पूर्ण अयोध्या राज्य में उदासी छा गयी थी।

vj.; dkM

अयोध्या से प्रस्थान कर रथ के घोड़े निरन्तर दौड़ते रहे और सायंकाल रथ तमसा नदी के तट पर पहुंचा । चारों ने सन्ध्योपासना की और जलपान कर सो गये ।

प्रातः सन्ध्योपासना से निवृत्त होकर चारों पुनः रथ पर बैठे। इस प्रकार, तीसरी शाम रथ गंगा के तठ पर एक विशाल वृक्ष के नीचे रुका।

सन्ध्योपासना के उपरान्त निषाद, गुह आतिथ्य की सामग्री लेकर राम की सेवा में उपस्थित हुआ और हाथ जोड़कर स्वीकार करने को कहा।

राम ने केवल घोड़ों के खाद्य पदार्थ ही स्वीकार किये और शेष सामग्री गुह को लौटा दी। फलाहार करके चारों ने शयन किया ।

प्रातः चारों नित्यकर्म से निवृत्त हुये और राम सुमन्त्र से बोले, "सुमन्त्र, अब आप अयोध्या वापिस जाइये और पिता से हम तीनों का प्रणाम पूर्वक योग क्षेम कहिये। हमारे कुशल समाचार जानकर पिता का शोक कुछ कम होगा।

सुमन्त्र ने रथ में घोड़े जोड़े । सुमन्त्र के कंधे को अपने हस्त से स्पर्श करके राम ने कहना प्रारम्भ किया, "सुमन्त्र जी, कुछ ऐसा उपाय करना जिससे पिता शीघ्र शोक रहित हो जायें।

सुमन्त्र खड़े–खड़े नीचा सिर किये चुपचाप सुनते रहे ।

"सुमन्त्र, माता कैकयी से कहना, "उनकी इच्छापूर्ति से हमारा कल्याण ही होगा। वे किसी भी अवसर पर किसी भी प्रकार का खेद न करें। सुमन्त्र सुरम्य वनों का स्वास्थ्य प्रद और मनोहारी बातावरण हमें बड़ा अनुकूल प्रतीत हो रहा है। पिता हमारी लेशमात्र चिन्ता न करें। भरत को शीघ्र बुलाकर उसे युवराज बना दें।''

"सुमन्त्र, माता कौशल्या की सेवा में हम तीनों का चरण वन्दन निवेदन करना और माता सुमित्रा के चरणों में भी "और, सुमनन्त्र, भरत से कहना, तीनों माताओं की समान श्रद्धा से सेवा करे। इस प्रसंग में माता कैकेयी और पिता के साथ अप्रिय और अशालीन भाषण तथा व्यवहार न करे।"

तीनों को अभिवादन कर सुमन्त्र के घोड़े अयोध्या की ओर वायु वेग से दौड़ गये।

उधर गुह द्वारा प्रस्तुत नौका से गंगा पार कर तीनों वनवासी गंगा–यमुना के संगम पर स्थित भारद्वाज ऋषि के आश्रम को लक्ष्य करके आगे बढ़े।

ऋषि के आश्रम में एक रात्रि विश्वाम करके तीनों चित्रकूट पहुँचे और वाल्मीकि ऋषि के आश्रम के समीप लक्ष्मण ने काष्ठ व तृण की एक पर्णशाला निर्माण की और तीनों ने वेद मन्त्रों से गृहप्रवेश संस्कार किया और वहीं रहने लगे।

सुमन्त्र अयोध्या पहुंचे और कौशल्या के महल में जाकर सुमन्त्र ने महाराजा दशरथ को तीनों के समाचार सुनाये। व्यथित महाराजा ने "राम" कहते हुए राम वियोग के पांचवें दिन सदा के लिंये अपने नेत्र बन्द कर लिये।

वशिष्ठ ऋषि की अनुमति से लाश तेल में डुबाकर रख दी गई और भरत–शत्रुघ्न को लेने के लिये भरत की ननिहाल को दूत भेजे गये।

दूतों को आदेश दिया गया कि वे राम के वनवास तथा दशरथ–मरण की वार्ता भरत–शत्रुघ्न को न सुनायें।

सातवीं प्रातः भरत–शत्रुघ्न ने अयोध्या में प्रवेश किया। शत्रुघ्न सुमित्रा के महल में पहुंचे और भरत कैकेयी के महल में। माता को प्रणाम

करके भरत ने पूंछा, माता नगर में शोक अवस्था क्यों है? मार्ग में आते हुए अयोध्या वासियों ने मेरा अभिवादन भी नहीं किया? पिता तो स्वस्थ हैं?"

आश्रुमोचन करती हुई कैकयी बोली– भरत महाराजा ने परसों ही लीला समाप्त कर दी। अपने महाप्रयाण से पूर्व महा राजा ने राम को चौदह वर्ष के वनवांस का आदेश दिया था। अतः सीता और लक्ष्मण–सहित राम चित्रकूट पर निवास कर रहे हैं ।"

मेरे धर्मात्मा भ्राता राम से, ऐसा क्या अपराध हुआ माता जो पिता ने उन्हें इतना कठोर दण्ड दिया? क्या उन्होंने परस्त्री की ओर देखा था, या वेदपाठ में अनध्याय किया था, या असत्य–भाषण अथवा प्रजाजन के साथ अन्याय किया था?

भरत को सीने से लगाकर कंकेयी ने सम्पूर्ण वार्ता सुनायी।

पूर्ण वृत्तान्त सुनकर भरत तड़प उठे और विषाद स्वर में बोले, "जननी, जब आप ही मुझे नहीं पहिचान पाई तो अन्य कोई मुझे क्या समझ पायेगें? आपने मुझे ऐसा पतित कैसे समझ लिया कि मैं देवतुल्य राम के स्वामित्व का अपहरण करने के लिये सहमत हो जाऊंगा?

"बच्चों सी भोली बातें न कर, भरत । सिंहासनारूढ़ होकर ऐसी व्यवस्था कर कि चौदह वर्ष के प चात भी राम तुझ से राज्य न छीन सके।" कैकयी ने कहा

"राम, और मुझसे राज्य छीनना! राम तो मेरी इच्छा मात्र पर मुझे सदा के लिये साम्राज्य सोंप देंगे!! परन्तु शोभा इसी में है कि मैं उनका सेवक बनकर, उनके आदेश में रहूं। पिता के शव की अन्त्येष्टि करके में अविलम्ब चित्रकूट से राम को अयोध्या लाऊंगा। राम के सिंहासन पर राम के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं विराज सकता।"

कैकयी ने कहा– "भरत!! मेरे किये–कराये पर पानी न फेर। मैने तेरे लिये राज्य साम्राज्य ""!

"राज्य–साम्राज्य नहीं, आपने मेरे लिये पतित पातक और अमिट अपयश सम्पादन किया है, जिसे धो डालने में यदि में सफल न हुआ, तो में अपने जीवन को स्वाहा कर दूंगा।"

कैकये ने फिर कहा "भरत, भावुकता में मेरे बने–बनाये कार्य को न बिगाड़ । मेरी लाज रख और राजा बनकर''''।

"बने को बिगाड़ नहीं रहा, मुझे बिगड़े कार्य को बनाने की चिन्ता है और लाज तो आपकी और मेरी उसी क्षण चली गयी, जिस क्षण राम अयोध्या से वन को गये। अन्तर्यामी भगवान तो जानते हैं कि मैं सर्वथा निर्दोष हूं, परन्तु विश्व में फैलने वाली, अपनी अपकीर्ति को मैं किस प्रकार मिटाऊंगा? अपकीर्तिक होकर राजा बनने की अपेक्षा कीर्तित होकर रंक बनना अच्छा है।"

इतना कहकर भरत विद्युत वेग से बाहर चले गये और कैकयी एक नयी उलभन में उलझी हुई–सी खड़ी की खड़ी रह गयी।

कौशल्या के महल में पहुंच कर, कौशल्या तथा सुमित्रा को सानत्वना देकर भरत ने दशरथ के शव की वेद मन्त्रों द्वारा हवि और घृत से अन्त्येष्टि क्रिया सम्पन्न की।

तदोपरान्त माताओं ने तथा मन्त्रियों ने भरत को अपना राजतिलक कराने की प्रेरणा की। भरत बोले, "राम हमारे बड़े भ्राता हैं, वे ही राजा बनेंगे। मै तो उनके स्थान में चौदह वर्ष व्रत में निवास करूंगा।"

तब वसिष्ठ ने प्रस्ताव किया, "भरत आप ही राजसिंहासन पर विराजें, क्योंकि राम अपनी प्रतिज्ञा कंदापि न त्यागेंगे।

भरत ने उत्तर में कहा– ''गुरुदेव मै अविलम्ब चित्रकूट जाऊंगा। आप सभी ज्येष्ठ भ्राता राम का वहीं राज्याभिषेक करके, उन्हें अयोध्या वापिस लाने में मेरी सहायता करें।"

शीघ्र ही हाथी, घोड़े, रथ, पालकी सजाये गये और विशिष्ट चतुरंगिणी सेनायें तैयार हुईं । भरत ने शत्रुध्न, तीनों माताओं, सुमन्त्र, वि ाष्ठ तथा प्रमुख नागरिक सहित राज्याभिषेक की सामग्री साथ. लेकर चित्रकूट को प्रस्थान किया। विशेष निरीक्षण दल सड़कों और पुलों की जांच तथा मरम्मत करता हुआ आगे–आगे चल रहा था।

हाथियों की चिंघाड़, घोड़ों की हिनहिनाहट, रथों की भंकार तथा सेना की थाप सुनकर लक्ष्मण एक शाल के वृक्ष पर चढ़ गया और इक्ष्वाकु–ध्वज तथा भरत को पहिचान कर आवेश में शस्त्र संभालते हुए बोले– "भरत सेना लेकर हम पर आक्रमण करने आ रहा है।

भ्राता! मै आज भरत को मारकर राज्याधिकारी को राज्य सौंपूंगा।"

राम मुस्कराये और बोले, "लक्ष्मण, तेरे, भरत के या शत्रुघ्न के बिना राज्यसम्पदा भोगना तो दूर, मै जीना भी न चाहूंगा । साधु भरत के लिये ऐसा सोचना भी पाप है। वह तो माता कैकेयी से रुष्ट होकर मुझे लिवाने आया है। मैं अपनी प्रतिज्ञा भंग न करूंगा । चाहो तो, भरत से कहकर राज्य तुम्हें दिलादूं? "

वृक्ष से उतर कर लक्ष्मण लज्जा से नीची दृष्टि करके अपने पैर की अंगुलियों से भूमि कुरेदने लगे।

हाथी, घोड़े, रथ, यान, सेनायें चित्रकूट के चारों और स्थित हो गये । भरत, शत्रुघ्न, मातायें, वशिष्ठ, सुमन्त्र तथा प्रमुख नागरिक ऊपर चढ़े। राम, सीता तथा लक्ष्मण पर्णशाला में सायं–यज्ञ से निवृत्त होकर

सन्ध्योपासना प्रारम्भ करने को ही थे कि राम की दृष्टि अपनी ओर आते हुए भरत पर पड़ी।

राम उठ खड़े हुये और भरत ने दौड़कर राम के चरणों पर अपना सिर टेक दिया। भरत को छाती से लगा कर राम ने आशीर्वाद दिया।

सब आपस में मिले और परस्पर अभिवादन आदि किया।

क्या पिताजी नहीं आये? राम ने भरत से पूछा।

भ्राता! पिताजी अब संसार में नहीं रहे।

क्या?

हां, भ्राता! आप वन चले आये और पिता परलोक चल दिये। सुन्दर अयोध्या सूनी पड़ी है।

धैर्य धारण करो, भरत। सूर्य अस्त होने वाला है अतः आप सभी सन्ध्योपासनादि से निवृत्त होकर विश्राम करें।

प्रातः—सन्ध्योपासनादि से निवृत्त होकर राम, सीता, लक्ष्मण, भरत, मातात्रय, शत्रुघ्न, वसिष्ठ, सुमन्त्र तथा प्रमुख जन एक चबूतरे पर गोलाकार बैठ गये।

राज्याभिषेक की सामग्री को देख कर राम ने पूंछा, यह क्या भरत?

भरत ने उत्तर दिया— भ्राता, मै निरपराध और सर्वथा निर्दोष हूं। जननी की भूल को भूल जाइये और हमारे साथ अयोध्या वापस चलिये।

राम ने कहा "न तुम दोषी हो, न माता। जो कुछ हुआ उसका परिणाम शुभ हो। भरत, मै अपनी प्रतिज्ञा को भंग नहीं होने दूंगा। अतः अब तुम ही राजा बनकर चौदह वर्ष तक धर्मपूर्वक प्रजा की सेवा करो।"

हम सभी में आप ही ज्येष्ठ भ्राता हैं। आप राजा बनने के अधिकारी हैं। मैं तो आपका भृत्य बनकर आपकी सेवा करने से ही परम सौभाग्य प्राप्त करूंगा। भरत ने हाथ जोडकर कहा।

राम ने कहा– मै अपने चौदह वर्ष के वनवास के संकल्प को शिथिल करने में सर्वथा असमर्थ हूं भरत।

भाई ! पिता तो अब नहीं हैं। परन्तु जिस माता ने आपको वनवास का आदेश दिया था, वह स्वयं आपको लिवाने आई हैं।

मै माता से निवेदन करूंगा कि वे मुझे प्रतिज्ञा भंग का दोषी बनाने का प्रयत्न न करें।

वशिष्ठ और सुमन्त्र ने भी प्रबल प्रेरणा की, परन्तु राम लौटने को सहमत न हुये ।

भरत निरुपाय सिर भुकाये बैठ गए और बोले भ्राता यदि आप अयोध्या नहीं चलते, तो मुझे भी अपने साथ चित्रकूट में रहने की अनुमति प्रदान कीजिये", भरत ने राम से विनय की।

"कदापि नहीं", राम ने उत्तर दिया। द्वितीय ज्येष्ठ बन्धु होने के नाते तुम्हें मेरी अनुपस्थिति में शासन भार वहन करके प्रजा की सेवा करनी चाहिये। तुम अपने कर्तव्य से विमुख नहीं हो सकते।"

भरत की आंखों से टप–टप आंसू टपकने लगे। आंखें पोंछ कर भरत आकाश की ओर देखने लगा। उसके हृदय में प्रकाश सा आया। राम के चरणों पर सिर रखकर भरत ने दोनों हाथों से राम की चरण–पादुकायें हस्तगत करलीं और खडे होकर बोले, "राम की अनुपस्थिति में राम के सिंहासन पर भरत नहीं, राम की यह चरणपादुकायें आसीन होंगी। भरत तो केवल सेवक बन कार्य करेगा।"

राम को खड़ा होते देखकर सब खड़े हो गये । भरत को छाती से लगाकर राम बोले, "जाओ भरत, धर्मपूर्वक राज्य करो।

"राज्य तो आपकी यह चरणपादुकायें करेंगी। मै तो आपके पुनरागमन तक, आपके समान तापस–वेश में नगर के बाहर ऐसी ही पर्णशाला में निवास करूंगा और कन्द–मूल–फल खाकर निर्वाह करूंगा। मैं आपके साथ ही राजधानी में प्रवेश करूंगा। कार्तिक अमावस्या को आपने अयोध्या से प्रस्थान किया था। चौदह वर्ष की समाप्ति पर कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी के सायं यदि आप अयोध्या न आए, तो मै उसी सायं जीवित चिताअग्नि में प्रवेश कर जाऊंगा।"

सब साथियों सहित भरत ने चित्रकूट से प्रस्थान किया। राम की भांति ही तापसी वेश्व धारण करके भरत ने स्वभार्या–सहित अयोध्या से बाहर नन्दीग्राम में निवास किया। राम की पादुकायें राम के सिहासन पर स्थापित करा दी गयीं। भरत नन्दीग्राम में रहकर ऋषियों तथा बुद्धिजीवों के परामर्श से राजकाज करने लगे।

समस्त भूमण्डल पर राम की ब्रतपालना तथा भरत की साधुता की सूचना विद्युतू–वेग से फेल गयी।

लगभग तीन वर्ष चित्रकूट पर निवास करके तीनों अन्य अरण्यों तथा पर्वतों के पर्यटन के लिये निकले और घूमते–घामते अत्रि ऋषि के आश्रम में पहुंचे।

अत्रि ऋषि और उनकी भार्या दोनों ही अति वृद्ध थे। तीनों ने ऋषि–दम्पती की प्रदक्षिणा करके उन्हें प्रणाम किया। ऋषि ने आशीर्वाद देकर बेठने का संकेत किया। पांचों यज्ञशाला में यज्ञ वेदी के चारों ओर कुछ क्षण मौन बैठे रहे।

मौन भंग करते हुए अत्रि ऋषि बोले, "राम तुमने अपने जीवन से मर्यादा पालन तथा धर्म परायणता का जो आदी स्थापित किया है, उसकी सुगंध आज सम्पूर्ण भूमण्डल में वासित हो रही है। तुम सचमुच मर्यादा पुरुषोत्तम हो।"

आपके इस आशीर्वाद के लिये ऋषिश्रेष्ठ मै बहुत आभारी हूं और आपका आशीर्वाद पाकर में आज सौभाग्यशाली बन गया हूं। राम ने अतिशय आदरपूर्ण स्वर में कहा।

"सीते, तुम भी धन्य हो," सीता की ओर देखकर अनुसुइया बोलीं, "नारी–समाज ही नहीं, सम्पूर्ण मानव–समाज युग–युग तुम्हारे गुणों की गाथा गाता रहेगा। तुमने पतिव्रत धर्म का अनुपम उदाहरण उपस्थित किया है।"

अधोदृष्टि से सीता बोलीं, "माता आपके इन आशीर्वादपूर्ण शब्दों से मुझे एक अलौकिक प्रेरणा–सी प्राप्त हो रही है।

आप मुझे कुछ उपदेश करें।" अनुसूया ने सीता को अनेक उपदेशप्रद बातें कहीं।

पतिपरायणता का उपदेश करते हुए अनुसूया ने कहा, "जो नारियां स्वार्थ, सुख या काम की भावना से पतिपरायण हैं।वे अधम कोटि की नारियां हैं। उत्कृष्ठ नारियां वे हें जिनकी कर्तव्य, वृद्धि तथा धर्म–भावना के प्रति निष्ठा होती है।"

अत्रि ऋषि के आश्रम से प्रस्थान कर तीनों दण्डक–वन मैं प्रविष्ट हुये। कुछ मास, मन्दाकिनी तीर पर महाऋषि सुतीक्षण के सुतीक्ष्णाश्रम में रहे। इस प्रकार लगभग दस वर्ष तक असंख्य वनों और पर्वतों में भ्रमण तथा अनेक आश्रमों में निवास करते हुए अगस्त्य ऋषि के आश्रम पहुँचे। ऋषि आश्रमों में बेद वेदांगों के अतिरिक्त ब्रह्मचारियों को शस्त्रों की

विशेष शिक्षा दी जाती थी। अकेले अगस्त्य ऋषि के आश्रम में उस समय सोलह हजार ब्रह्मचारी शिक्षा पाते थे और शस्त्रों का विपुल भण्डार था।

अगस्त्य ऋषि से राम को ज्ञात हुआ कि बाली की सहायता से लंकाधीश रावण ने आर्यावर्त के दक्षिण में एक विशाल प्रदेश पर अधिकार कर लिया है और धीरे धीरे आगे बढ़ने का उपक्रम कर रहा है।

अगस्त्य, राम और लक्ष्मण ने मन्त्रणा की और एक निश्चित योजना बनाई।

तदनुसार, राम लक्ष्मण और सीता पंचवटी पहुंचे। लक्ष्मण ने एक उत्तम पर्णशाला बनाई और तीनों ने वहीं निवास किया।

पंचवटी के निकट ही तपस्वी, विरक्त महात्मा जटायु निवास करते थे। इनका मुख्य नाम तो सवर्था विस्मृत हो गया था, परन्तु इनकी श्वेत लम्बी जटाओं के कारण लोग इन्हें जटायु कहते थे। राम का आगमन सुनते ही महात्मा जटायु ने बताया कि वे महाराजा दशरथ के चिरपरिचित सखा हैं, तो राम, सीता और लक्ष्मण ने उनका बड़ा आदर किया।

राम का अभिप्राय जानकर महात्मा जटायु ने सब प्रकार की रक्षा व सेवा का वचन दिया। साथ ही तीनों को बहुत सतर्क व सावधान रहने का परामर्श दिया। बात ही बात में लक्ष्मण ने कैकयी की निन्दा की तब राम ने कहा, "लक्ष्मण, माता की निन्दा करना अनाचार है। मातृनिष्ठ माता के किसी भी व्यवहार में अनिष्ट का चिन्तन नहीं करते।"

पंचवटी, गोदावरी के निकट रावण द्वारा विजित प्रदेश में एक बड़े ही सुरम्य वन में स्थित थी। कतिपय योजन की दूरी पर रावण की एक

सैनिक छावनी थी, जिसका सेनापति था खर और उपसेनापति था दूषण।

इस छावनी में उस समय रावण की सुवीरा भगिनी शूर्पणखा आई हुई थी। यह महिला यद्यपि आयु में अतिवृद्धा थी पर थी बड़ी निर्भय, शूर और युद्धप्रिय।

पंचवटी में राम के आगमन तथा निवास का समाचार पाकर खर ने दूषण तथा शूर्पणखा से मन्त्रणा की।

खर ने कहा, "यह अगस्त्य और राम का हमें अपने इस विजित प्रदेश से निकाल बाहर करने के षडयन्त्र की भूमिका है। राम को पंचक्टी से बाहर निकाल कर अगस्त्य के आश्रम को अतिशीघ्र ही अपने अधिकार में लेना चाहिये। साथ ही हमारी सीमाओं के निकटवर्ती अन्य समस्त आश्रमों को भी जिनमें अनेक सहस्त्र युवक विद्यार्थी हमारे विरुद्ध सैनिक मोर्चे बनाये हुये हैं। अब हमें अविलम्ब ही आश्रम वासियों को ध्वस्त करके मृत्यु के घाट उतारना चाहिये।

ऋषियों के ये सब तथा कथित आश्रम वास्तव में सैनिक छावनियां हैं और इन सबका कर्णधार एवं सूत्र संचालक ऋषि अगस्त्य ही है।

फिर तीनों ने मिलकर एक योजना बनाई, जिसका प्रारम्भ शूर्पणखा से होना था।

एक दिन राम, सीता और लक्ष्मण पर्णशाला के सामने बेठे हुए प्रकृति का सौन्दर्य अवलोकन कर रहे थे कि शूर्पणखा वहां आ धमकी।

"आप लोग कोन हैं?" शूर्पणखा ने गर्जकर पूंछा।

"देवी, में राम हूं। यह मेरी घर्मिणी सीता है और यह मेरा अनुज लक्ष्मण है।" राम ने उदारता के साथ उत्तर दिया।

"आप लोगों ने यहां हमारी सीमा में आकर डेरा क्यों डाला है?" शूर्पणखा बोली।

"देवि, जैसा कि विश्वविदित है, हम चौदह वर्ष के वनवास पर यतिवत वन–वन भ्रमण कर रहे हैं। उस अवधि की पूर्ति में अब कुछ ही मास शेष हैं। घूमते–घूमते इधर आ निकले हैं क्यों कि किसी के भी राज्य में यतियों को कहीं रोक–टोक नहीं होती।"

"मै आदेश देती हूं कि आप लोग अभी हमारी सीमा से बाहर चले जायें।"

"देवि, नारियों से वादविवाद या झगड़ा करना आर्य शील के विपरीत है। हमारे इस निवास में किसी को कोई आपत्ति न होनी चाहिये।"

"मैं अन्तिम बार पुनः आदेश देती हूं कि आप लोग इसी क्षण यहां से चले जायें।" शूर्पणखा तर्जकर बोली।

इससे पूर्व कि राम कुछ बोलें, लक्ष्मण ने आवेश में भरकर शूर्पणखा से कहा, "देवि, आप अपना रास्ता लो। हमें यहां से कोई नहीं हटा सकता। हम जब तक चाहेंगे तब तक यहीं रहेंगे।"

शूर्पणखा लक्ष्मण के इस अवज्ञासूचक तथा अपमानजनक उत्तर पर क्रोध से लाल हो गयी

और तीव्र गति से चलते हुए बोली, "आप लोग इस अवज्ञा और अपमान का परिणाम भुगतने के लिये तैयार रहें।"

सम्राट रावण की बहन के आदेश की अवज्ञा की गयी और लक्ष्मण ने अपमान सूचक शब्दों से उसको और भड़का दिया, यही लक्ष्मण द्वारा शूर्पणखा की नाक का काटा जाना था। नाक काटना या नाक कटना

एक प्रयोग (ईडियम) है, जो अवज्ञा और अपमान के अर्थ में प्रयुक्त होता है।

शूर्पणखा सीधी खर के पास पहुँची। युद्ध की तैयारी दोनों ओर से थी। इधर से खर, दूषण और शूर्पणखा ने अपने चौदह सहस्त्र सीमा रक्षक सेनिकों के साथ आक्रमण किया और उधर से राम–लक्ष्मण ने अगस्त्याश्रम के सहस्रों योद्धाओं के साथ आभिमुख्य किया। खर और दूषण सहित लगभग समस्त सीमा रक्षक देखते रहे । राम पक्ष के योद्धाओ तथा देवों ऋषियों ने विजेता राम पर पुष्पवर्षा की।

अकम्पन ने रावण को खर–दूषण तथा सीमा रक्षकों के वध की सूचना दी। रावण ने क्रोध से अतिशय उत्तेजित होकर आर्यावर्त पर आक्रमण करने का आदेश दिया। अकम्पन और मारीच ने रावण को समझाया कि उत्तेजना में कोई अनुपयुक्त पग उठाना ठीक न होगा।

शूर्पणखा ने सुझाया, "आर्यावर्त में जाकर युद्ध करना अनीतिमत्ता होगी। लंका से आर्यावर्त को जल तथा आकाश मार्ग से सैन्य और सामग्री ले जाना और पहुँचाते रहना अति दुष्कर कार्य होगा। अच्छा हो कि युद्ध को लंका में लाया जाये। यदि राम युद्धार्थ लंका में आये तो आर्यावर्तीय पक्ष असुविधा में होगा और हम सुविधा में होंगे। लंका संसार में अद्वितीय सुसज्ज दुर्ग है। आर्यावर्तीय सेना वहां के अज्ञात चक्रों में फंसकर स्वयं नष्ट हो जायेगी। राम की सेना का संहार करके और राम को परास्त करके हम आर्यावर्त में अपने राज्य विस्तार का मार्ग प्रशस्त कर सकेंगे।"

रावण को यह सुझाव मान्य और प्रशस्त प्रतीत हुआ और वह उत्सुकता के साथ बोला, "परन्तु युद्ध को लंका में लाया किस प्रकार जाये ।"

"इसका समाधान मेरे पास है," शूर्पणखा ने उत्तर दिया।

"वह क्या है? रावण ने पूछा।

शूर्पणखा ने कहा "राम की भार्या सीता का हरण करके उसे यहां लाया जाये। राम आर्य है और वह सीता हरण के अपमान को सहन न कर सकेगा। वह सीता के प्राण रक्षण के लिये यहां अवश्य आयेगा और युद्ध करेगा। निस्सन्देह ही हम उसे यहां पूर्ण पराजित करने में सफल होंगे।"

रावण को शूर्पणखा की यह यूक्ति बहुत पसन्द आई। उसने मारीच से इस कार्य में सहायता मांगी।

मारीच बोला, "रावण, नारी का हरण करना, तेरे जैसे पराक्रमी राजा के लिये शोभनीय नहीं है और छल से नारी हरण तो पाप की पराकाष्ठा है। फिर यह भी संदिग्ध है कि युद्ध को लंका में लाने से, लंका की विजय होगी। भार्या सीता के अपहरण से समूचे आर्यावर्त में जो प्रचण्ड ज्वाला धधकेगी उसका परिणाम लंका के विध्वंस के ही होगा।

रावण मारीच की इस उक्ति. पर अत्यन्त रुष्ट और क्रुद्ध होकर बोला, "मारीच, संभवता तुम्हें लंका की सेन्य शक्ति और लंका के दुर्ग की अजेयता का ज्ञान नहीं। तुझे मेरे अभिमुख ऐसी बातें कहने में संकोच और लज्जा का न होना आश्चर्य की बात है।"

मारीच ने शान्त भाव से उत्तर दिया, "राजन सदा प्रिय बोलने वाले मनुष्य संसार में सुलभ होते हैं। परन्तु अप्रिय लेकिन हितकारी बात के कहने और सुनने वाले दोनों ही दुर्लभ हैं।

मारीच ने फिर कहा, "रावण, विश्वामित्र के आश्रम पर में राम और लक्ष्मण के अतुल बल और अमित पराक्रम का परिचय पा चुका हूं। मै फिर यही परामर्श दूंगा कि इस समय मौन का ही अवलम्बन किया जाये और उचित अवसर की प्रतीक्षा की जाये। परंतु रावण न माना और सीताहरण की विधि विचारने लगा।

रावण की योजनानुसार मारीच का पालतू हरिण सीता की पर्णशाला के समीप छोड़ा गया । सीता शाला के अभिमुख फूल चुन रही थी। हिरण को देखते ही सीता उसके सौन्दर्य पर मुग्ध हो गयी और सहसा बोली, "अहा, देखिये राम, कैसा सुन्दर हिरण। इसे जीवित पकड़िये। इसे हम पालेंगे और अयोध्या ले चलेंगे।"

fdf"dU/kk dkM

राम ने गर्दन उठाई, ओह!! अदभुत हिरण कहकर राम ने धनुष–बाण उठाये और हिरण का पीछा किया। राम ने जाते–जाते लक्ष्मण को आदेश दिया की तुम यहीं सीता के पास रहना।

मृग को जीवित पकड़ने की लालसा में राम उसका पीछा करते हुए बहुत दूर निकल गये। राम को गये बहुत देर हो चुकी थी।

सीता ने कम्पित स्वर में लक्ष्मण से कहा– तुम जाओ और उन्हें शीघ्र लौटा कर लाओ।"

"चिन्ता न कीजिये, देवी। वीर राम का कोई अनिष्ट नहीं कर सकता," लक्ष्मण ने निवेदन किया।

"किन्तु सूर्य अस्त होनेवाला है, लक्ष्मण। तुम अविलम्ब जाओ और उन्हें वापित लाओ," सीता ने पुनः कहा।

"जो आज्ञा," कह कर लक्ष्मण उसी ओर चल दिये, जिधर हरिण और राम गये थे।

सूर्य अस्त हो गया, परंतु राम और लक्ष्मण न लौटे अतरू सीता अधीर हो रही थी। वो अभिमुख पुष्पों की झाड़ियों में खड़ी हुई, एकटक उसी ओर देख रही थी, जिधर राम और लक्ष्मण गये थे। सहसा किसी ने पीछे से आकर सीता को अधर उठा लिया।

कौन ???

रावण !!!

राम दोड़ो!! लक्ष्मण शीघ्र आओ!!

"देवि, सब प्रयास व्यर्थ होगा। वे दोनों बहुत दूर हैं। नीचे घाटी में लघु विमान है। कुछ ही क्षणों में तुम लंका की ओर उड़ी जा रही होगी।" रावण ने कहा

घाटी के नोचे स्थित, ध्वनिरहित लघु विमान में रावण ने संघर्ष करती हुई सीता को पटका ही था कि महात्मा जटायु उधर आ गए और रावण से बोले– "मैं भले ही वृद्ध और निहत्था हूँ, पर एक आर्य नारी का अपमान सहन नहीं कर सकता", यह कहते हुए जटायु रावण की ओर बढ़े। एक ही वार में रावण ने जठायु को घायल करके घराशायी कर दिया। क्षण–भर में ही विमान आकाश में चढ़ कर लंका की ओर उड़ने लगा।

सीता शोक से पागल–सी हो गयी। उसने अपने बहुमूल्य आभूषण उतारे और एक हस्त्र वस्त्र (रूमाल) में लपेट कर सीता ने वह पोटली नीचे पटक दी, जो नीचे एक पर्वतशिखर पर आसीन सुग्रीव व हनुमान के मध्य में जाकर गिरी।

जब राम व लक्ष्मण लौट कर आये। सीता को खोजते–खोजते दोनों घाटी में उतरे "सीते, सीते," राम ने सवेग पुकारा ।

"यहां आओ", सीता के बजाय घायल जटायु ने उत्तर दिया। जटायु ने वह घटना सुनाई और बातें करते करते तत्क्षण महात्मा जटायु का वहीं प्राणान्त हो गया।

"यह अक्षम्य है। रावण अब संसार में अधिक जीवित नहीं रह सकता", राम ने लक्ष्मण की ओर देखते हुए कहा।

लक्ष्मण ने आकाश की ओर दोनों भूजायें उठा कर कहा–"मैं रावण के साथ रावण की लंका को ध्वस्त किये बिना अयोध्या की ओर मुख न करूंगा।"

उसी समय जटायु की अन्त्येष्टि क्रिया की गयी और दोनों नें खुले आकाश के नीचे वहीं एक चट्टान पर वह निशा व्यतीत की।

प्रातः राम व लक्ष्मण ऋष्यमूक पर्वत को पार कर रहे थे कि दूर से सुग्रीव ने उन्हें देखा।

हनुमान को सम्बोधन करते हुए सुग्रीव ने कहा, "देखिये, वे दो वीर कौन हैं? कहीं वे बाली के जासूस तो नहीं हैं?

हनुमान दोनों के समीप पहुँच कर बोले, "आप दोनों इस प्रदेश में नवागन्तुक प्रतीत होते हैं। क्या में आपका परिचय प्राप्त कर सकता हूं?"

दोनों ने पीछे मुड़ कर देखा। हनुमान का अभिवादन स्वीकारते हुए राम बोले, "हां, हम यहां अपरिचित हैं और एक समस्या का समाधान खोज रहे हैं।

"क्या में आपकी समस्या को जान सकता हूं?", हनुमान ने उत्सुकतापूर्वक पूछा।

"क्यों नहीं", राम ने उत्तर दिया।

लक्ष्मण ने हनुमान को आदि से अन्त तक सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया

"यहां सुग्रीव की सहायता के लिये एक सुयोग है", ऐसा विचारते हुए हनुमान ने राम व लक्ष्मण को सुग्रीव की कष्टगाथा सुनानी प्रारम्भ की।

"किष्किन्धा राज्य का अधीश बाली, अपने कनिष्ठ बन्धु सुग्रीव का वध करके उस (सुग्रीव) की रूपवती लावण्यमयी भार्या को अपनाना चाहता है। बाली के भय से त्रस्त सुग्रीव यहां समीप ही मलयाचल पर एक गुहा में छिपा हुआ है और सुग्रीव की भार्या बाली के महल में है। आप सुग्रीव को किष्किन्धा का राज्य प्राप्त कराने का कोई उपाय कर

सकें तो इस राज्य के सम्पूर्ण साधनों और स्रोतों का उपयोग आपकी सहायता हो सकेगा।"

"यह एक देवी संयोग प्रतीत होता है", यह सोचते हुए राम ने हनुमान से कहा, "आप महाराज सुग्रीव! से हमारी भेंट कराइये ।"

राम और लक्ष्मण को वहीं छोड़ कर हनुमान सुग्रीव से मन्त्रणा करने के लिये चले गये।

राम हनुमान से बहुत प्रभावित हुए। हनुमान के वहां से चले जाने पर राम लक्ष्मण से हनुमान के विषय में कहने लगे, "लक्ष्मण, देखो, हनुमान कितना सुसंस्कृत भाषण करता है। जिसने ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद का अध्ययन न किया हो, वह इस प्रकार नहीं बोल सकता। अवश्य, इसने समस्त व्याकरण को पढ़ा है, क्योंकि इतना अधिक भाषण करते हुए एक शब्द का भी इसने अशुद्ध उच्चारण नहीं किया। वाक्य नपे–तुले और व्यवस्थित व मध्यम स्वर में बोलता है। इसे सुनकर हृदय हर्षित हो उठा है। भला, अपनी चित्र–विचित्र सुन्दर वाणी से यह किसके हृदय को प्रसन्न नहीं कर देगा।"

सुग्रीव से मन्त्रणा करके हनुमान ने राम व लक्ष्मण को मलयाचल पर ले जाकर सुग्रीव की गुफा के अभिमुख खड़ा किया। सूचना पाते ही सुग्रीव बाहर निकला राम व लक्ष्मण का परिचय देकर राम की ओर संकेत करते हुए हनुमान ने सुग्रीव से कहा, "इस वन में रहते हुए इन संयमी महात्मा की भार्या रावण ने हर ली है। अतः ये आपकी शरण में आये हें।"

राम की ओर अपना दक्षिण हस्त बढ़ाते हुए सुग्रीव ने राम से कहा, "यदि आप मेरी मित्रता स्वीकार करें, तो मेरी यह भुजा प्रस्तुत है। आइये, हाथ मिलाइये और हम दोनों मित्रता की मर्यादा में बंध जायें।"

राम व सुग्रीव ने परस्पर हाथ मिलाकर मित्रता स्थापित की। हनुमान ने यज्ञ अग्नि प्रवजलित की । राम व सुग्रीव ने यज्ञाग्नि की प्रदक्षिणा करके मित्रता की परिपुष्ठि की और एक दूसरे को वचन दिया, "आज से तुम मेरे अन्तरंग सखा हो । हम दोनों में से एक का सुख ओर दुःख दूसरे सखा का भी सुख और दुःख होगा।" दोनों मित्र गुफा में बैठकर परस्पर प्रेमपूर्वक वार्तालाप करने लगे। प्रथम सुग्रीव ने आदि से अंत तक अपनी कष्ट–गाथा सुनाई।

राम बोले, " हे सुग्रीव, यदि आप मेरी सहायता न भी करें,. तो भी मेरे जैसे मर्यादा पालक एवं धर्मपरायण व्यक्ति का यह नैतिक कर्तव्य हो जाता है कि मै ऐसे पापी को दण्ड दूं। जो अपने कनिष्ठ बंधु की भार्या के साथ पापाचार करता है।

ऐसे पापी के राज्य में प्रजा बहुत दुःखी रहती है। मै अवश्य बाली का वध करके आपको सिंहासनारूढ करूंगा।"

कतिपय आभूषण दिखाकर सुग्रीव ने कहा, "रावण के वायुयान में से उस दिन हमें हे राम! हे राम! पुकारती हुई एक देवी का करुण क्रन्दन सुनाई दिया था और साथ ही यह पोटली वायुयान से हमारे समीप गिरी।"

राम ने कहा "लक्ष्मण, पहिचानो तो। क्या ये आभूषण सीता के हैं?"

"भ्राता! मैं न तो इन भुजबन्धों को और न इन कुण्डलों को पहिचानता हूं। हां, इन नूपुरों को मै अवश्य पहिचानता हूं क्योंकि चरणवन्दना करते समय, नित्य इन्हें देखा करता था ।" लक्ष्मण ने उत्तर दिया ।

बाली के वध की योजना पर विचार हुआ। राम ने सुग्रीव से कहा, "अपने वनवास की अवधि की समाप्ति तक में नगर या ग्राम में प्रवेश

नहीं कर सकता। आप ऐसा उपाय करें कि बाली राजधानी से बाहर आ जाये । हम राजधानी के समीप बाह्यवर्ती प्रदेश में स्थित रहेंगे ।"

निश्चित योजना के अनुसार राम, लक्ष्मण, हनुमान, नल तथा नील राजधानी के समीपवर्ती अरण्य में स्थित हो गये और सुग्रीव ने एकाकी राजधानी में प्रवेश करके बाली के महल के मुख्य द्वार पर जाकर बाली को ललकारा। बाली सुग्रीव पर झपटा। सुग्रीव उस अरण्य की दिशा में लपका।

आगे–आगे सुग्रीव भागा जा रहा था ओर पीछे–पीछे बाली। दोनों ने अरण्य में प्रवेश किया। सुग्रीव बहुत आगे था और बाली बहुत पीछे।

राम ने पीछे से बाली पर एक घातक बाण छोड़ा और एक ही वार में घायल होकर बाली धराशायी हो गया । राम, लक्ष्मण, हनुमान, सुग्रीव आदि बाली के समीप आये ।

राम–लक्ष्मण का परिचय पाकर मरणासन्न बाली ने राम से कहा, "राम, मेरी आप से कोई शत्रुता न थी। आपने अकारण मेरे साथ यह अन्याय क्यों किया ? "

"बाली", राम ने उत्तर दिया, "तुमने कनिष्ठ बन्धु की भार्या के साथ, जो तुम्हारी पुत्री के समान थी, पापाचार किया । तुमने स्वदेश पर आक्रमण करने वाले विदेशीय रावण की सहायता की और उसके साथ मित्रता की। तुम्हारे ये दोनों ही अपराध ऐसे जघन्य हैं कि मृत्यु भी पर्याप्त दण्ड नहीं है।

थोड़ी ही देर में बात करते–करते बाली के प्राणपखेरू उड़ गये। चारों ओर उदासी छा गयी।

सूचना पाकर बाली की भार्या, सुन्दरी तारा अपने पुत्र, अंगद–सहित वहां आई और बाली के शव पर रोदन करने लगी।

बाली की अन्त्येष्टि की गयी । राम का आदेश और आशीर्वाद पाकर सुग्रीव गद्दी पर बैठा। अंगद सुग्रीव का उत्तराधिकारी (युवराज) घोषित किया गया।

lqUnj dkM

श्रावण से अश्विन तक किष्किन्धा में युद्ध की प्रबल तैयारियां होती रहीं। नील ने भारी सैन्य संग्रह किया। हनुमान ने दक्षिण प्रदेश के राज्य–राज्य में भ्रमण करके और अपने प्रभाव से सब राजाओं से धन, जन, आयुध, खाद्य आदि सब प्रकार का सहयोग प्राप्त किया। समुद्र के किनारे एक बहुत ही सुदृढ़ और सुरक्षित बन्दरगाह तथा वायुयान क्षेत्र बनाया गया। इस बन्दरगाह के समीप सैन्य तथा युद्ध सामग्री का संग्रह किया गया। युद्ध सज्जा पूर्ण होने पर लंका का आन्तरिक भेद लेते और लंका की सैनिक शक्ति का रहस्य जानने के लिये हनुमान ने एक लघु वायुयान–द्वारा लंका राज्य की राजधानी, लंका नगर को प्रस्थान किया। उस समय आर्यावर्त और लंका के बीच समुद्र की चौड़ाई १०० योजन (४०० कोस) थी । हनुमान ने सम्पूर्ण यात्रा एक ही छलांग (उड़ान) में पार की। यान को समीप के सघन जंगल में छिपा कर हनुमान ने यति वेष में नगर में प्रवेश किया। हनुमान कई दिन तक राजधानी में प्रसिद्ध और महत्त्वपूर्ण स्थानों में भ्रमण करते हुए जनसाधारण के सम्पर्क में आकर भेद लेते रहे। हनुमान ने लंका में वेदों का अध्ययन व पाठ होते देखा । घर–घर में यज्ञ शालायें थीं और प्रत्येक गृह में दोनों समय यज्ञ होता था। सुवर्ण, हीरा, मणि से प्रजा सम्पन्न थी। काष्ठ या मिट्टी का बना कोई घर न था। नगर के सम्पूर्ण आवास पीले पत्थरों के बने हुए थे। वर्णाश्रम धर्म का यथाविधि पालन होता था। समस्त प्रजा परम आस्तिक और धार्मिक थी।

रावण के पुष्पक विमान को देखकर हनुमान आश्चर्य चकित हो गए। उसमें शतशः मनुष्यों के बैठने व शयन के प्रबन्ध के अतिरिक्त, सुन्दर

जलाशय, मनोहर क्रीडास्थल, विद्युत्रकाश, भोजन आदि की सब सुविधायें थीं।

हनुमान ने लंका के राजमहलों का अवलोकन किया, सैनिक छावनियों का पर्यटन किया, गुप्त मार्गों का पता छगाया। रावण की पतिव्रता परम सुन्दरी भार्या मन्दोदरी को देख कर हनुमान स्तब्ध रह गये। मन्दोदरी अपने समय की विश्व में सुन्दरतम नारी थी। पता लगाने पर हनुमान को ज्ञात हुआ कि रावण तथा उसके पुत्र–पौत्र आदि की सब भार्याएं विवाहिता, पवित्रचरित्रा श्रौर पतिव्रता थीं। किसी की भी भार्या में कोई दोष न दिखा।

सीता के विषय में हनुमान को ज्ञात हुआ कि रावण ने सीता को अशोक वाटिका में समुचित आदर के साथ ठहराया हुआ है । अशोक वाटिका में ठहराते समय रावण ने सीता से कहा था, "सीते, यहां आप उसी प्रकार निवास करें, जिस प्रकार आप जनक अथवा दशरथ के महलों में निवास करती थीं। आपका अपमान करना मेरा उद्देश्य नहीं। मेरी शत्रुता राम से है। नारी का अपमान करना मेरा धर्म नहीं।"

साथ ही हनुमान को पता लगा कि रावण तथा विभीषण के पारस्परिक सम्बन्ध बहुत कटु हैं और दोनों एक दूसरे का अहित चाहते हैं ।

हनुमान ने सबकी दृष्टि बचाकर विभीषण के महल में ही विभीषण से भेंट की। विभीषण ने हनुमान को अनेक रहस्य प्रकट किये, उपाय सुझाये और युद्ध में सब प्रकार से राम की सहायता करने का वचन दिया। हनुमान ने भी विभीषण को विश्वास दिलाया कि रावण की पराजय अथवा रावण का वध होने पर राम विभीषण को ही लंका का अधीश बनायेंगे। विभीषण से हनुमान को यह भी ज्ञात हुआ कि विभीषण की पुत्री प्रायः सीता से मिलने जाया करती है और सीता को सब प्रकार की सुविधा व सान्त्वना देती रहती है।

विभीषण से विदा लेकर हनुमान ने अशोक वाटिका की ओर प्रस्थान किया । अशोक वाटिका के परकोटे के नदी की ओर के द्वार के बाहर शिशिपा वृक्ष के नीचे एक अति सुरम्य स्थान पर जब हनुमान आये, तो सहसा उनको ऐसा लगा कि भगवती सीता सन्ध्या के लिए अवश्य ही ऐसे सुरम्य, जलीय लेट–युक्त स्थल पर आती होंगी । यह अनुमान कर वे वहीं रुक गये ।

इतने ही में शुभासन हाथ में लिए सीता वहां आयी। हनुमान ने चिह्नों से सीता को पहिचानकर प्रणाम किया। श्रीराम के दूत के रूप में अपना नाम बताकर अपना परिचय दिया। परिचय देने के उपरान्त हनुमान ने राम को सोने की अंगूठी सीता को समर्पित की। सीता ने अंगूठी को पहिचान कर उसे अपने वाम हस्त की अंगुलि में धारण किया।

हनुमान ने सीताहरण के बाद से अब तक के सब समाचार तथा राम व लक्ष्मण के योग क्षेम सुनाये और विदा होते हुए सीता से निवेदन किया, "महारानी, हम बहुत शीघ्र यहां आकर लंका विजय करेंगे।"

"ऐसा ही हो । लो, मेरा यह चूडामणि मेरी निशानी के रूप में महाराज राम को भेंट करना", यह कहकर सीता ने हनुमान को विदा दी ।

सीता से विदा होकर हनुमान राजमार्ग पर जा रहे थे कि रावण के पुत्र अक्षय की अध्यक्षता में सेनिकों की एक टुकड़ी ने हनुमान पर आक्रमण कर दिया। हनुमान ने आत्म रक्षा में प्रबल पराक्रम किया और अक्षय तथा अनेक सेनिकों को मार गिराया। इतने ही में रावण का ज्येष्ठ पुत्र इन्द्रजीत (मेघनाद) वहां आ पहुंचा और उसने ब्रह्मास्त्र से हनुमान को जकड़ कर बन्दी बना लिया ।

हनुमान के बन्दी होने की सूचना कुछ ही क्षणों में प्रचण्ड अग्नि के समान सम्पूर्ण राजधानी में फैल गयी। जनता में तीव्र उत्तेजना

(संन्सेशन) की एक तीक्ष्ण लहर दौड़ गयी। शत्रु का एक गुप्तचर कई दिनों से राजधानी में घूमता–फिरता रहा और सीता तक पहुंच गया, किन्तु लंका का गुप्तचर–विभाग उसे भांप न सका । इससे राजधानी के नागरिकों में एक आग–सी लग गयी । यही था हनुमान द्वारा लंका–दहन।

दरबार में रावण के अभिमुख हनुमान को उपस्थित किया गया। "तुम कौन हो और यहां क्यों आये हो ?", रावण नें गरजकर सरोष हनुमान से प्रश्न किया।

"लंकेश, मै धर्मात्मा राम का राजदूत हूं और महाराज सुग्रीव का मंत्री हूं। महाराज ने आपके प्रति समुचित समादर तथा शुभ कामनाओ के साथ मुझे आपकी सेवा में भेजा है। महाराज ने कहलाया है कि धर्मात्मा राम की धर्मशीला, पतिव्रता, निरपराध भार्या, सीता को आप शान्ति पूर्वक लोटा दें, ताकि व्यर्थ का युद्ध तथा नरसंहार न होने पाये", हनुमान ने उत्तर दिया।

"यदि तुम सचमुच राजदूत थे, तो तुम्हें यहां आते ही मेरे महामंत्री को अपने आगमन की सूचना देनी थी। तुम्हें राज्य का अतिथि बनकर यहां रहना चाहिये था", रावण ने क्रोध के साथ कहा।

पूर्व इसके कि हनुमान कुछ कहते, रावण ने आदेश दिया, "इसे प्राणदण्ड दिया जाना चाहिये। मै आज्ञा करता हूं कि इसे इसी क्षण बाहर लेजाकर वध कर दिया जाये।"

तब विभीषण ने रावण को समझाया, "यहां इस समय हनुमान का वध राजनीतिक दृष्टि से बड़ी भारी भूल और भयानक अनीतिमत्ता होगी, जबकि हनुमान स्वयं अपने को सार्वजनिक रूप से राजदूत होने की घोषणा कर रहा है। दूत सदा–सर्वत्र और अवध्य होता है।"

रावण शान्त हो गया और उसने पुनः घोषणा की, "क्योंकि हनुमान अपने आपको राम का राजदूत घोषित करते हैं, मै उन्हें प्राणदण्ड से मुक्त करके ससम्मान विदा करता हूं।

"मैं आपकी ओर से क्या सन्देश ले जाऊं", हनुमान ने बहुत विनय पूर्वक पूछा ।

"महाराज सुग्रीव इस प्रसंग से सर्वथा तटस्थ रहें, उनके लिये यही उचित होगा। राम को मेरे बन्धुओं के वध तथा मेरी बहिन की अवज्ञा का प्रतिफल चखना ही होगा।

"तथास्तु", कहकर हनुमान ने प्रस्थान किया और एक ही उड़ान में राम की छावनी में वापिस पहुंच कर सप्रणाम राम को सीता का चूडामणि भेंट किया ।

चूडामणि पहिचान कर राम ने उसे रख लिया और खड़े होकर हनुमान को गले से लगाया।

हनुमान ने लंका सब वृत्तान्त सुनाया। विभीषण की सहायता का आश्वासन दिया।. लंका के दुर्गों का तथा वहां की सैनिकों का रहस्य बताते हुए, हनुमान ने कहा, "लंका राजधानी का परकोटा अभेद्य है। नगर में, भूमि के ऊपर के दुर्गों के अतिरिक्त, भूमि के नीचे विशाल रहस्यपूर्ण दुर्ग हैं। नगर के चारों ओर गहरी खाइयां हैं, जो यन्त्र घुमाने मात्र से जल पूर्ण अथवा जल रहित हो जाती हैं।

लंका नगर एक भिन्न पर्वत पर है। दूर–दूर पर्वतों पर अनेक कृत्रिम राजधानियां तथा कृत्रिम दुर्ग हैं। लाखों प्रबल योद्धा हैं । किन्तु विभीषण की मित्रता से सब कठिनाइयों को पार करके हम विजय सम्पादन करेंगे और माता सीता को मुक्त करेंगे।

y;dk dkM

"सुग्रीव के सेनापतित्व तथा हनुमान, अंगद, नल–नील श्रौर जामवन्त के नेतृत्व में सेनाओं ने वायुयानों द्वारा लंका को प्रस्थान किया और शस्त्रास्त्र, अन्य युद्धसामग्री तथा खाद्य–पदार्थ जलपोतों द्वारा भेजे गये। पीछे से सैन्य व सामग्री पहुँचते रहने का प्रबन्ध किया गया।

विभीषण की मन्त्रणा तथा प्रबन्ध के अनुसार लंका राजधानी से कतिपय योजन की दूरी पर एक नियत अरण्य में पड़ाव डाला गया । यह सब ऐसे गुप्त रूप से किया गया कि रावण को उसका तब तक तनिक भी पता न चला। जब तक कि सुग्रीव की छावनी पूर्णरूप से सज्ज व सुरक्षित न हो गयी।

जासूसों से रामागमन तथा सुग्रीव के सेन्यसंग्रह की सूचना पाते ही रावण ने अपने मन्त्रियों तथा सामन्तों से मन्त्रणा की। रावण के ज्येष्ठ पुत्र मेघनाद (इन्द्रजीत) को युद्ध का सर्वोपरि सेनापति नियुक्त किया गया।

अपना नाटक प्रारम्भ करते हुए विभीषण ने रावण से निवेदन किया, "युद्ध से मुझे न अपने कुल का मंगल ह्रष्टिगोचर होता है और न लंका राज्य का। अतः मै प्रस्ताव करता हुँ कि सीता को ससम्मान लौटा कर राम व सुग्रीव से सन्धि की जाये।"

इस नाटक का वही परिणाम हुआ जिस दृष्टि से यह खेला गया था। रावण और मेघनाद ने विभीषण को फटकारा। विभीषण रोष के साथ चार मन्त्रियों सहित दरबार से उठकर बाहर चला गया और उसने अपने मित्रों, सामन्तों तथा सैन्यों–सहित राम के पक्ष में रावण के विरुद्ध लड़ने का निश्चय किया। सबको साथ लेकर वह रातों–रात राम की छावनी में जा पहुंचा और वहां अपना एक पृथक पड़ाव डाल दिया।

रावण की सेना में एक भयंकर दरार पड़ गयी। लंका राज्य के कर्णधार तथा प्रजाजन युद्ध के औचित्य–अनौचित्य के विषय में दो भागों में बंट गये।

इस प्रकार स्वयं रावण के मन्त्रियों, सामन्तों तथा पारिवारिक जनों में दो मत हो गये।

छावनी के मध्य में स्थित केन्द्रीय तंबू में राम, लक्ष्मण, सुग्रीव तथा हनुमान ने मन्त्रणा की कि विभीषण को विश्वास में लिया जाये या नहीं। सुग्रीव ने असंख्य नीतिवाक्यों से प्रमाणित करते हुए परामर्श दिया कि "विभीषण को विश्वास में न लिया जाये । वह शत्रु का बन्धु है। किसी भी क्षण उसकी भावनायें रावण के पक्ष में उभर सकती हैं और हमारे मध्य में रहकर वह हमारा भारी अनिष्ट कर सकता है।"

सुग्रीव का अनुमोदन करते हुए लक्ष्मण बोले, "विभीषण को विश्वास में लेना और उसे अपने मध्य में रखना प्रत्यक्षतः अपने सर्वनाश को निमन्त्रण देना है। कोई बन्धु अपने बन्धु का अनिष्ट कब तक और कहां तक सहन करेगा। अपने सहोदर और अपने राष्ट्र का अहित देखकर वह धोखे से राम का वध करके, पुनः रावण के पास भाग जायेगा। नीतिमत्ता इसी में है कि विभीषण को उसके सामंतों तथा सैनिकों सहित युद्ध वन्दी बना लिया जाये।"

मुस्कराते हुए राम ने हनुमान की ओर रहस्यपूर्ण दृष्टि घुमाई। अतिशय दृढ़ ध्वनि और विश्वस्त मुद्रा के साथ हनुमान ने कहा, "मै विभीषण का अच्छी प्रकार अध्ययन कर चुका हूं। दीर्घ समय से विभीषण और रावण के बीच भीषण कटुता है। विभीषण लंका के राज्य का भूखा है। यदि उसे यह पूर्ण विश्वास दिला दिया जाये कि रावण के मारे जाने पर विभीषण को ही लंका का अधीश बनाया जायेगा, तो विभीषण एक मन

से हमारा साथ देगा और उस अवस्था में हमारी विजय असन्दिग्ध हो जायेगी।"

लक्ष्मण की मुखाकृति से राम को लगा कि लक्ष्मण को हनुमान की बात रुचिकर नहीं लगी। पूर्व इसके कि लक्ष्मण अपने ओष्ठ खोलते, राम ने लक्ष्मण के कान में कहा, "लक्ष्मण, सब भाई भरत के समान नहीं होते, न सब पुत्र मेरे जैसे होते हैं और न ही सब मित्र तुम्हारे समान होते हैं।" लक्ष्मण शान्त हो गये।

हनुमान गये और विभीषण को लिवा लाये। परस्पर अभिवादन के पश्चात्त राम ने विभीषण को स्नेह पूर्वक अपने पास बिठाया और दोनों बातचीत करने लगे।

राम ने कहा– "मै दशग्रीव रावण को प्रहस्त आदि उसके सहायकों–सहित मारकर, तुम्हें लंका का राजा बनाऊंगा, यह मैं तुमसे सत्य कहता हूं।

विभीषण बोला, "राक्षसों के वध और लंका की विजय में जी जान से में सहायता करूंगा तथा आपकी सेनाओं का मार्ग प्रदर्शन करूंगा।

राम का आदेश पाकर लक्ष्मण समुद्र का जल ले आये और सागर के उस जल से राम ने सद्यः विभीषण का राज्याभिषेक कर दिया। युद्ध की समाप्ति तो दूर, युद्धारम्भ से भी पूर्व राम ने विभीषण को लंका का अधीश स्वीकार कर लिया। नीतिपटु हनुमान ने बधाई देते हुए घोष किया, "लंकाधिपति महाराज विभीषण की जय।"

आशवस्त होकर विभीषण ने राम को लंका के समस्त रहस्य बता दिये। राम की छावनी से लेकर लंका राज्य तक यह सूचना सर्वत्र अविलम्ब प्रसारित कर दी गयी। लंका की सेना और जनता दोनों ही के उत्साह

में एक स्वाभाविक क्षीणता–सी आगयी । सबको रावण की विजय में शंका–सी होने लगी।

रावण ने शुक नामक कुटनीतिज्ञ को सुग्रीव तथा विभीषण को फोड़ने के लिये भेजा, किन्तु उसे विफलता हुई ।

लंका की शोभा और छटा अवलोकन करके राम मुग्ध हो गये। सहसा उनके मन में आया, "काश, युद्ध न होता और संसार का यह सुन्दरतम नगर ध्वस्त न होता ।"

राम की छावनी का संगठन किया गया और युद्ध की योजना तथा व्यूह रचना की गयी।

उधर रावण ने शुक व सारण नामक दो भेदियों, को राम के सैन्य ओर बल का पता लगाने के लिये भेजा। विभीषण ने दोनों को पहिचान लिया और बंदी बनाकर राम के अभिमुख प्रस्तुत किया। राम ने दोनों को मुक्त करा दिया।

शुक और सारण ने वापिस पहुंचकर रावण से निवेदन किया, "राम का बल ओर उनकी सेना का बल अजेय है। नीतिमत्ता इसी में है कि ससम्मान सीता को लौटा दिया जाये और राम से मित्रता कर ली जाये।

अब रावण ने शार्दूल नामक एक दक्ष गुप्तवर को पुनः राम के बल तथा सैन्य का भेद लेने भेजा । उसने भी राम के बल तथा सैन्य को अजेय पाया, शार्दूल ने वापिस आकर रावण को राम से सन्धि करने का परामर्श दिया ।

युद्धारम्भ करने से पूर्व राम ने अंगद को शान्ति का प्रयास करने के लिये रावण के पास भेजा ।

अंगद ने रावण से प्रेरणापूर्वक निवेदन किया– "लंकेश, धर्मात्मा राम चाहते हैं कि आप सीता को आदरपूर्वक लौटा दें। युद्ध में दोनों ही पक्षों की अपार हानि होगी। आप स्वयं धर्मशास्त्र और राजनीति के प्रकाण्ड पण्डित हैं। व्यर्थ के रक्तपतात और विनाश को रोकने में आप सर्वथा समर्थ हैं।

रावण ने उत्तेजित होते हुये कहा– "अंगद! मेरे देश पर आक्रमण करने के बाद अब तुम सन्धि का संदेश लेकर आये हो। राम और उनके साथी अपने अपने सैन्य सहित प्रथम लंका से वापिस चले जायें। तदुपरानत सन्धि की वार्ता का कुछ औचित्य हो सकता है।

वार्तालाप करते करते रावण तथा अंगद में युद्ध तक की नौबत आ गयी। मन्त्रियों ने रावण को समझाया कि अंगद दूत है। दूत पर आक्रमण करना उचित नहीं। अंगद ने दृढ़ता के साथ रावण का प्रतिरोध किया। यही रावण की राजसभा में अंगद का पैर गाढ़ना था। पैर गाढ़ने का अर्थ दृढ़ता–द्योतन होता है ।

अंगद ने वापस आकर राम को सूचित किया कि सन्धि का प्रयास असफल हुआ है।

युद्ध आरम्भ हुआ। लंका के पक्ष के लोग रावण की जय बोलते थे और रामपक्ष के लोग महाराजा सुग्रीव की जय बोलते ये।

प्रथम दिन अंगद ने मेघनाद की गदा, रथ, अश्व, सारथि खण्ड–खण्ड कर डाले । क्षुब्ध होकर मेघनाद ने तुमुल युद्ध किया और राम–लक्ष्मण को शस्त्रों से वेध दिया। अन्ततः मेघनाद ने नागफांस का प्रयोग किया और राम–लक्ष्मण को धराशायी कर दिया। दोनों पक्षों ने उन्हें वीरगति को प्राप्त हुआ समझ लिया। लंका में आनन्दोल्लास मनाया जाने लगा और इधर सुग्रीव की छावनी में शोक छा गया।

रावण ने मेघनाद को हृदय से लगाकर साधुवाद कहा। पुष्पक विमान में सवार कराकर, आकाश से सीता को मृत राम–लक्ष्मण को दिखाया गया। सीता व्यग्र होकर विलाप करने लगी।

अब विभीषण आया और उसने राम–लक्ष्मण की मुद्रा को देखकर कहा, "ये दोनों अभी जीवित हैं।"

लंका के राजवैद्य सुषेण, जो विभीषण के साथ उसके केम्प में ही रहते थे बुलायें गये । उनके उपचार से थोड़ी ही देर में राम को चेतना आ गई। लक्ष्मण को अचेतावस्था में देखकर राम अधीर हो उठे । कुछ काल पश्चात लक्ष्मण भी सचेत हो गये।

राक्षसी त्रिजटा को जब यह सब गुप्त रूप से ज्ञात हुआ तो उसने जाकर सीता को बताया कि राम–लक्ष्मण दोनों स्वस्थ व सकुशल हैं। सीता को ढाढ़स बंधा ।

दूसरे दिन पुनः युद्धारम्भ हुआ। राम–लक्ष्मण को जीवित देखकर राक्षसों में आश्चर्य व आतंक छा गया। धूम्राक्ष व हनुमान का भयंकर साम्मुख्य हुआ द्य धूम्राक्ष मारा गया और राक्षससेना भाग खड़ी हुई।

तीसरे दिन रावंण ने वज्रदंत के सेनापतित्व में अतुल सेना युद्धक्षेत्र में भेज दी। घनवृष्टि की तरह शस्त्रास्त्रों का प्रक्षेपण हुआ। फिर ढाल तलवार चलीं। अंगद ने वच्वदंष्ठ का सिर काट कर धरा पर गिरा दिया। राक्षस सेना अव्यवस्थितावस्था में रणक्षेत्र से पलायन कर गई।

चौथी बार अकम्पन की अध्यक्षता में रावण की विशाल सेना ने रणक्षेत्र में प्रवेश किया। उधर से हनुमान ने सेनासहित प्रहार किया। अकम्पन हनुमान के दरों व शास्त्रों को खण्ड–खण्ड करके गिराने लगा। हनुमान ने मरने या मारने को संकल्प करके वज्ञास्त्र तथा वृक्षास्त्र का प्रयोग

किया। अकम्पन बुरी तरह घायल होकर भूमि पर गिरा ही था कि हनुमान ने तलवार से उसका शिर घड़ से अलग कर दिया।

अकम्पंन के मरने पर लंका की अतुल सेना भाग खड़ी हुई। अमित दस्त्रास्त्र सुग्रीव की सेना के हाथ लगा। यह समाचार पाते ही रावण अत्यन्त क्षुब्ध व अधीर हो उठा एवं शीघ्र ही अपने मन्त्रिमण्डल को बुलाकर रावण ने लंका की दृढ़तम मोर्चा बन्दी की योजना बनाई और वह तुरन्त कार्यान्वित की गयी। स्वयं सेनापति प्रहस्त की अधीनता में सुग्रीव की सेना पर आक्रमण किया गया। श्रेष्ठतम मारू–बाजे बजते हुए दिव्य रथ में स्थित प्रंहस्त सुग्रीव की सेना पर प्रचण्ड उग्रता के साथ टूटा।

विभीषण ने सुग्रीव की सेना व सेनापतियों को प्रहस्त के सब दाव–पेंच अच्छी प्रकार समझा दिये। युद्ध शूलप्रहार से प्रारम्भ हुआ। युद्धक्षेत्र में सहसा ज्वार–भाटा चढ़ा। प्रहस्त ने प्रलयंकर संग्राम किया।

विभीषण द्वारा सुशिक्षित व सावधान होकर नील ने प्रहस्त का अभिमुख्य किया। योजनानुसार नील ने प्रहस्त के शस्त्रास्त्र काट डाले। निःशस्त्र प्रहस्त मूसलास्त्र छोडकर रथ से कूद पड़ा और सुग्रीव की सेना पर अन्धाधुन्ध प्रहार करने लगा। प्रहस्त ने क्रुद्ध होकर नील के सिर पर भयंकर वार किया। शिर से घायल होकर भी नील ने प्रहस्त की छाती में झूल (भाला) भोंक दिया और पुनः फुर्ती के साथ उसने प्रहस्त के शिर पर गदा ठोक दी। प्रहस्त मारा गया। लंका की सेना में भगदड़ मच गयी।

रावण घोर गम्भीर होकर विचार करने लगा, "जिन्होंने प्रहस्त जेसे वीर शिरोमणि को मार गिराया, वे साधारण वीर नहीं हो सकते।" रावण ने विशिष्ट सामन्तों और सेनाओं के सहित सुग्रीव की सेना पर स्वयं आक्रमण किया। भयंकर युद्धवाद्य बज रहे थे।

रावण, इन्द्रजीत, महोदर, कुम्भ, निकुम्भ और लंका की सेना साक्षात मृत्यू का रूप धारण करके रण क्षेत्र में उतरे।

विभीषण ने सुग्रीव, राम, लक्ष्मण, हनुमान आदि सबको रावण के चिह्नों का परिचय दिया और रावण की युद्ध चालें सबको अच्छी प्रकार समझाई और बतलाया की किसका किस प्रकार वध करना है।

रावण के ऊपर दृष्टि पड़ते ही सहसा राम के मुख से निकल पड़ा, "अहो दीप्त महातेजस्वी राक्षसेश्वर रावण ! सूर्य के समान इसकी ओर दृष्टि लगाये रहना कठिन हो रहा है। कितना तेज है इस वीर में।

राम और लक्ष्मण रावण की ओर झपटे। रावण के अभिमुख अति समीप पहुँच कर सुग्रीव ने रावण पर वार किया । थोड़ी ही देर में रावण ने सुग्रीव को घायल करके, भूमि पर गिरा दिया और सुग्रीव की सेना का भयंकर संहार किया ।

फिर लक्ष्मण रावण के सामने आकर डटे और हनुमान ने चपलता के साथ आगे बढ़कर रावण पर वार किया। रावण ने हनुमान को भी बुरी तरह घायर करके नीचे पटक दिया।

अब नील सामने आया। रावण ने उसे भी घायल कर दिया। नील मूर्छित होकर नीचे गिर गया।

आगे बढ़कर रावण लक्ष्मण पर झपटा। लक्ष्मण ने अदभुत पराक्रम करके रावण के शस्त्रों की आकाश में ही खण्ड–खण्ड करना प्रारम्भ किया। अन्ततः रावण ने लक्ष्मण पर ब्रह्मास्त्र छोड़ा और उसे शिर से घायलर कर दिया।

संभल कर लक्ष्मण ने वार किया और रावण के धनुष को तोड़ डाला। क्रोध कर रावण ने लक्ष्मण पर अमोघास्त्र छोड़ा जिससे सम्पूर्ण रणक्षेत्र

में विषैला धुंआ छा गया और लक्ष्मण का सीना घायल हो गया। लक्ष्मण मूर्छा से पीड़त होकर गिर पड़े।

रावण ने लक्ष्मण को उठाकर अपने रथ में पटक, उड़ा कर लेजाना चाहा कि संभल कर ठीक समय पर हनुमान आ पहुँचे। उन्होंने प्रबल वज्र प्रहार करके रावण को क्षण भर के लिये मूर्छित सा कर दिया और लक्ष्मण को उठाकर राम के डेरे में ले गये ।

उधर सद्यः राम, रावण के सामने आये और रावण के शस्त्रसमूह व रथ को बेकार कर दिया। सायं सन्ध्या निकट आती, देखकर राम ने रावण से कहा, "वीर, प्रातः से अब तक निरन्तर युद्ध करते–करते आप श्रान्त होगये हैं । नितान्त घोर युद्ध करके आपने निरसन्देह बड़े वीरत्व का परिचय दिया है। आज आप के हाथ से हमारी सेना के अनेक वीर मारे व घायल किये गये हैं । अतिशय श्रान्त होने के कारण इस समय आप का वध करना सरल है। किन्तु थके हुए शत्रु पर प्रहार करता सैन्य मर्यादा के विरुद्ध है। अतः युद्ध बन्द करके अब आप जाइये। स्वस्थ होकर जब श्राप पुनः रणक्षेत्र में आयेंगे, तब में आपका युद्धोचित स्वागत समादर करूंगा ।"

मन–ही–मन राम के उदार शील की प्रशंसा करता हुआ रावण, लंका नगर में प्रविष्ट हुआ और राम अपने डेरे में पहुँच लक्ष्मण के उपचार में लग गये।

रावण ने रात्रि में ही अपना मन्त्रिमण्डल बुलाया और पादाघात से युद्ध करने लगा। विद्युतास्त्र से राम ने उसके दोनों पग भी काट डाले।

"कुम्भकर्ण मारा गया", यह सुनते ही रावण मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़ा।

सूर्योदय के साथ रावण के पुत्र त्रिशिरा, देवांतक, अतिकाय तथा नारांतक के नेत्रत्व में रण प्रचण्ड हुआ और सूर्यास्त होते–होते प्रचुर सेना–सहित चारों शेष रहे।

फिर दिन निकलते ही इन्द्रजीत (मेघनाद) ने रावण के अभिमुख राम व लक्ष्मण के वध का संकल्प करके विपुल सेना सहित रणक्षेत्र को प्रस्थान किया।

भारी तुमुल युद्ध हुआ और मेघनाद ने एक–एक करके नील, नल, जाम्बवान, सुग्रीव, अंगद को घायल करके पटक दिया । सुग्रीव की सेना में भगदड़ मच गयी । हनुमान व सुषेण को घायल करके गिराता हुआ, मेघनाद राम और लक्ष्मण की ओर झपटा और क्षण–भर में ही दोनों को घायल करके गिरा दिया ।

रात्रि हो गयी और मेघनाद विजय घोषों के साथ लंका नगर में प्रविष्ट हुआ ।

एक–एक करके रावण के परिवार के सब वीर मारे गये। केवल उसका ज्येष्ठ पुत्र इन्द्रजीत (मेघनाद) शेष रहा।

रावण ने इन्द्रजीत को आदेश दिया, "कल राम व लक्ष्मण का वध करके ही आओ।" इन्द्रजीत ने प्रातः वेद की ऋचाओं से विजय यज्ञ किया।

अन्तर्धान होने वाले सूर्य रथ पर ब्रह्मास्त्र सहित सवार होकर वि ाल सेना के साथ इन्द्रजीत ने संग्राम भूमि में प्रवेश किया।

आकाश में अन्तर्धान होकर इन्द्रजीत ने राम व लक्ष्मण पर शस्त्रों की वर्षा प्रारम्भ की। राम व लक्ष्मण ने दिव्यास्त्रों के प्रयोग से मेघनाद पर शस्त्र छोड़े। मेघनाद ने धूमास्त्रों से अंधेरा कर दिया। राम ने विद्युतास्त्र से मेघनाद के रथ का अवलोकन करके शस्त्रों का प्रयोग किया ।

मेघनाद ने अन्धास्त्र से घोर घटाटोप कर दिया। राम की ओर से राक्षसों के शस्त्रों के घोष के अनुसार शब्दभेदी बाण छोड़े जाने लगे ।

विभीषण को लक्ष्मण के साथ देखकर मेघनाद ने विभीषण से कहा, "विभीषण, तुम मेरे पिता साक्षात भ्राता हो। जिस की छाया में तुम्हारा जीवन बीता है, उस भ्राता के प्रति तुम आज विद्रोह कर रहे हो? धर्मदूषक, दुर्मते, जाति, सखा, धरम, सगापन क्या ये तेरे लिये कुछ भी मूल्य नहीं रखते? हे दुर्बुद्धे ये बड़े दुःख की बात है। सज्जन तेरी निन्दा करेंगे क्योंकि तू अपने लोगों को त्यागकर दूसरों का दास बना फिरता है। शिथिल, नीच बुद्धि वाला तू नहीं समझ रहा की कहां स्वजनों में संवास और कहां पराश्रय। पराया चाहे गुणी हो और अपना चाहे निर्गुण हो, अपना निर्गुण फिर भी श्रेयस्कर है, क्योंकि पराया आखिर पराया ही तो है। जो अपनों को छोड़कर पराय की सेवा करता है वह, अपनों के नाश के उपरान्त, उन्हीं परायों के द्वारा मारा जाता है।

विभीषण ने खिसियाकर उत्तर दिया, "ओ अभिमानी, दुष्ट और दुर्विनीत राक्षस, काल के पाश में बंधा मरणासन्न तू इस समय मुझे जो चाहे कह ले। तभी लक्ष्मण व इन्द्रजीत में भीषण संग्राम छिड़ गया। लक्ष्मण, हनुमान व विभीषण ने घेरा डालकर इन्द्रजीत को थका दिया। वीरों को सम्बोधन करते हुए विभीषण ने कहा, "मेघनाद इस समय बहुत थका हुआ है। आज उसे जीवित न जाने दो।" मेघनाद विभीषण पर झपटा। लक्ष्मण ने आगे बढ़कर मेघनाद के सारथि को मार डाला। फिर रथ को तोड़ दिया। मेघनाद पैदल ही युद्धरत हुआ।

दूसरा हेमरथ आया और मेघनाद उस पर स्थित हो युद्ध करने लगा। लक्ष्मण ने पुनः मेघनाद के सारथि व रथ को समाप्त कर दिया। मेघनाद निरुपाय हो फिर पैदल ही युद्ध करने लगा। लक्ष्मण ने ऐन्द्रास्त्र घुमाया

और मेघनाद का सिर कटकर भूमि पर गिर गया। अब रावण नितान्त अकेला रह गया ।

आज ब्रह्मकवच तथा ब्रह्मास्त्र धारण करके स्वर्ण रथ में स्थित होकर रावण, शेष समस्त सेना–सहित सरोष रणक्षेत्र में उतरा और सीधा राम व लक्ष्मण के अभिमुख स्थित होकर संग्राम करने लगा। रावण ने भंयकर तामस अस्त्रों का प्रयोग किया। राम ने परमास्त्र से रावण के मस्तक को वेध दिया। लक्ष्मण ने रावण के सारथि को मार गिराया और रावण का अभ्यस्त धनुष तोड़ डाला।

विभीषण ने रावण के रथ के घोड़े मार गिराये। रावण ने पैदल हो विभीषण पर वार किया। लक्ष्मण ने सतर्कता के साथ विभीषण की रक्षा की। रावण द्वारा विभीषण पर छोड़ी गयी शक्ति लक्ष्मण के वक्ष को वेधती हुई पार निकल गयी। लक्ष्मण मरणासन्न होकर भूमि पर गिर पड़ा। सुग्रीव व हनुमान को लक्ष्मण की सेवा में नियुक्त करके राम ने रावण पर प्रलयंकर प्रहार किया। यह देख रावण घबराकर भाग खड़ा हुआ।

राम लक्ष्मण की चिन्ताजनक अवस्था देखकर कहने लगे, "हा, लक्ष्मण के वध हो जाने पर ऐसे राज्य से भी क्या? मै माता सुमित्रा को किस प्रकार ढाढ़स बंधाऊंगा? माता कौसल्या और कैकयी को क्या कहूँगा? और महाबली भाई शत्रुध्न को क्या कहकर सान्त्वना दूंगा? जिसके साथ मैने वन को प्रस्थान किया था, उसके बिना में वापिस कैसे जाऊंगा? बन्धुनाश से तो यहीं मर जाना अच्छा है। हाय!! पूर्वजन्म में मैंने, क्या दुष्कृत किया था, जो मेरा धार्मिक भ्राता मेरे सामने ही मर गया? हे नरश्रेष्ठ भ्राता, तू मुझे किसके भरोसे छोड़कर अकेला चला गया? वीर, मै रो रहा हूं। तू बोलता क्यों नहीं ? उठ, सो क्यों रहा है ? अपनी आंखों से मुझ दीन की दशा देख।"

सुषेण ने राम को सान्त्वना देकर हनुमान से कहा, "वीर, ऋषयमूक पर्वत से सूर्योदय से पूर्व विशल्यकारिणी, सावर्ण्यकारिणी, संजीवकारिणी तथा सन्धानकारिणी बूटियां लेकर आइये। अन्यथा लक्ष्मण के जीवन की रक्षा न हो पायेगी। हनुमान इतनी दूरी से बूटियां लेकर सूर्योदय से पूर्व आ सकेंगे, आशा कम थी ।

ज्यों–ज्यों सूर्योदय का समय निकट आता जाता था, त्यों–त्यों रामदल की अधीरता बढ़ती जा रही थी। हनुमान विमान को सवेग उड़ाते हुए आशातीत शीघ्रता से आवश्यकता से कहीं अधिक बूटियां लेकर सूर्योदय से पर्याप्त पूर्व ही वापिस आ गये।

बूटियों की अतिशय अधिक मात्रा को देखकर सबके मुख से निकला "हनुमान पर्वत ही उठा लाये।"

हनुमान के गमनागमन की तीव्र गति का वर्णन आलंकारिक ढंग से करते हुए कवि ने लिखा है कि हनुमान ने सूर्य को अपने मुख में बन्द करके रख लिया अर्थात सूर्योदय की गति से हनुमान के विमान की गति बहुत अधिक तीव्र थी।

सुषेण ने उचित बूटियों का प्रयोग किया। लक्ष्मण सचेत होकर उठ खड़े हुए। राम ने लक्ष्मण का आलिंगन किया । प्रभात होते ही रावण अपनी सम्पूर्ण सेना और पूर्ण सज्जा के साथ रणक्षेत्र में आया। राम और रावण में रोमांचकारी द्विरथ युद्ध हुआ । राम ने फुर्ती से ब्रह्मास्त्र छोड़ा, जो रावण के हृदय को वेधता हुआ पार निकल गया ।

रावण वीरगति को प्राप्त हुआ। राम के आदेश से विभीषण ने रावण का अन्त्येष्टि कृत्य किया ।

राम के डेरे पर विभीषण का राजतिलक हुआ।

अशोक वाटिका पहुँच कर हनुमान ने सीता को आद्योपान्त सम्पूर्ण विवरण सुनाया।

विभीषण स्वयं सीता को लिवाने गये। रणाक्षेत्र में से गुजरते हुए सीता ने रक्तरंजित मैदान और लाशों के ढेर देखे। उस भीषण दृश्य को देखकर सीता का सम्पूर्ण हर्षोल्लास म्लानता में परिवर्तित हो गया। सीता का नारी हृदय वैराग्य और ग्लानि से युक्त हो गया।

सीता को वेराग्यव्यथित देख कर राम ने समझाया, "सीते, यह नरसंहार आपके व्यक्तित्व के लिये नहीं, सम्पूर्ण अपितु नारी जाति के मान की रक्षा तथा आर्य जाति के गौरव की सुरक्षा के लिये हुआ है। इस नरहत्या का पाप न आप पर है, न हम पर।

सीता के हृदय में वैराग्य रेखा इतनी गहरी खिंच गयी थी कि वह कितने भी सान्त्वना वचनों और उपदेशों से लेश–मात्र भी मिटायी या हल्की न की जा सकी।

विभीषण ने चाहा कि राम कुछ दिन और ठहरें किन्तु भरत के योगक्षेम की चिन्ता के कारण राम ने यह स्वीकार न किया।

सुग्रीव आदि की सेनायें यथाक्रम व्यवस्थित रूप से अपने–अपने राज्यों को लौट पड़ीं। विभीषण ने पुष्पक विमान को सर्वतः भरपूर और सुसज्ज करके राम को भेंट किया। राम, सीता और लक्ष्मण पुष्पक विमान में सवार होकर अयोध्या को रवाना हुए। हनुमान, सुग्रीव, विभीषण, अंगद, नल, नील, सुषेण आदि राम को अयोध्या तक पहुँचाने के लिये पुष्पक में सवार हुए ।

mRrj dkM

अयोध्या जाते हुए मार्ग में सुग्रीव ने किष्किन्धा में पुष्पक विमान को उतरवाया। भरत की चिन्ता से राम ने हनुमान को सर्वाग्र अयोध्या भेज दिया, ताकि वह समय पर पहुँच कर भरत को सूचित करदें कि राम अयोध्या आ रहे हैं। अगले दिन राम सब साथियों–सहित पुनः अयोध्या को रवाना हुए। तारा भी सीता के साथ पुष्पक में सवार हुई। उधर एक दिन पूर्व अयोध्या पहुँच कर हनुमान ने भरत को राम के आगमन की सूचना दी। भरत आनन्दविभोर हो गये।

भरत के आदेश से सद्यः यज्ञ, योग, दान, पुण्य, वादन, गान होने लगे। सेनायें सजने लगीं। मारू बाजे, स्वागत–गान बजाने लगे। पताकायें फहराई जाने लगीं। अयोध्या नव वधू को तरह सजधज गयी। नन्दी आश्रम से अयोध्या तक और सम्पूर्ण राजमहल तक राजसी सजावट की गयी।

पूर्ण सज्जा के साथ, भरत राम के आगमन की प्रतीक्षा करने लगे। राजमातायें तथा राजरानियां अपने–अपने रथों पर बैठी आकाश की ओर निहार रही थीं। भरत पैदल ही सबके आगे टहल रहे थे। आकाश में पुष्पक को पहिचान कर हनुमान ने भरत को संकेत किया भरत ने हर्षोन्मत्त होकर घोष किया, "राम आ गये ।"

सुनते ही सेनानियों तथा रथारोहियों के घोड़े हर्ष से हिनहिनाने लगे। मारू बाजों की गूंज से आकाश गूंज उठा। पुष्पक नीचे उतरा। समस्त कण्ठों से सहसा एक साथ निकला, "मर्यादापुरुषोत्तम राम की जय। धर्मावतार राम की जय। आर्य गौरव राम की जय। विक्रम–विजयी राम की जय।"

राम सर्वप्रथम पुष्पक से बाहर निकले और पीछे–पीछे सीता, लक्ष्मण तथा अन्य सब । राम और भरत का मिलाप हुआ।

भक्त और भगवान दोनों थे निराले रंग में ।

एक बिन्दु आंख में था दूसरा था प्याले में ।।साधु भरत आगे बढ़े। सीता को प्रणाम कर लक्ष्मण के साथ हृदय से हृदय मिलाया। राम ने विभीषण, सुग्रीव, तारा, अंगद आदि का भरत से परिचय कराया। सीता, राम व लक्ष्मण माताओं की ओर बढ़े और प्रणाम कर कुशलक्षेम पूंछा।

पुनः वशिष्ठ ऋषि के आश्रम पर प्रणाम करने गये। वसिष्ठ आश्रम से लौट कर राम, सीता व लक्ष्मण फिर स्वागत स्थल पर आये, जहां अपार जनसमूह ने तीनों पर पुष्पवर्षा की और उन्हें पुष्पमालायें पहनाई।

भरत ने राम को, राम की पादुकायें पहिनाकर उनसे निवेदन किया, "आज मेरा जन्म सफल हुआ। मेरा मनोरथ पूर्ण हुआ। आज मै आपको पुनः अयोध्या में आया हुआ देख रहा हू।

रघुकुल के इस भ्रात स्नेह को देखकर सुग्रीव और विभीषण की आंखों में अश्रु छलक आये।

नगर कीर्तन व नगर फेरी के पश्चात राम का राज्याभिषेक हुआ। महर्षि वि ाष्ठ ने संपूर्ण वेद मंत्रोचार व विधिविधान से राम के सिर पर राजमुकुट पहिनाया। अभिशेक होते ही राम ने घोषणा की, "मै साधु भरत को अपना उत्तराधिकारी अर्थात युवराज नियुक्त करता हूँ।" "साधु भरत की जय" के घोष से गगन मण्डल गूंज उठा ।

जैसा कि पहिले वर्णन किया जा चुका है, महारानी सीता रक्तरज्जित युद्धक्षेत्र को देखकर बैराग्य को प्राप्त हो गई थीं। जब महाराज राम ने अपने राज्याभिषेक के अवसर पर भरत को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया, तो उससे महारानी सीता को भारी मर्मवेदना हुईं। इस घटना ने

उनकी वैराग्य अग्नि पर घृत डालने का काम किया। वैराग्यवती सीता और अधिक वैराग्यमयी होगईं। उन्हें रह–रह कर न जाने क्या क्या विचार आये।

महाराज राम ने भरत को अपना उत्तराधिकारी इस धर्म–भावना से घोषित किया था कि भरत ने राम के प्रति अपनी अनन्य निष्ठा का परिचय दिया था। भरत का त्याग अनुपम था। किन्तु महारानी सीता के हृदय पर इस घटना –से आघात पहुंचना भी स्वाभाविक था। कोई भी माता अपने पुत्र या पुत्रों को उनके अधिकार से वंचित होता देखना चुपचाप सहन नहीं कर सकती। सीता को लगा कि मेरी संतान निरपराध ही राज्याधिकार और सम्राज्य पद से वंचित की जा रही है।

राज्याभिषेक के दो–तीन मास पश्चात सीता गर्भवती हुईं तो उनकी वह चिन्ता और अधिक तीव्र हो उठी। सीता विचारने लगीं, "जब मेरी संतान को राज्य नहीं मिलना है, तो उत्तम यही होगा कि में राजमहल को छोड़कर ऋषि वाल्मीकि के आश्रम पर रहने लग जाऊं। राज्यश्री से वंचित होकर मैं और मेरी संतान अयोध्या में रहकर दासवत जीवन क्यों बितायें। इस प्रकार यहां रहने से तो जंगल में तपस्वियों जैसा जीवन बिताना कहीं अधिक श्रेयस्कर होगा।

सीता नित्य ही राम से आग्रह करने लगीं कि "मुझे वाल्मीकि" आश्रम में जाकर निवास करने की अनुमति दीजिये। मेरा वैराग्यपूरित हृदय संसार और सांसारिकता में कोई आनन्द अनुभव नहीं करता है।

राम तो सीता को अपने प्राणों से भी अधिक प्यार करते.थे। वे सदा सीता का मन बहलाते रहते और सीता के इस आग्रह को टालते रहते।

गर्भवती हुए छः मास बीतने पर एक दिन सीता ने साग्रह निवेदन किया, "आर्य राम अब मै उन पुण्य तपोवनों में निवास करना चाहती हूं, जो

गंगा के तीर पर स्थित हैं। जिनमें निर्विकार तेजस्वी ऋषि निवास करते हैं, जहां लतायें और वृक्ष फलों से लदे रहते हैं, जहां प्राणी प्राणी को प्यार करता है। जहां प्रकृति में साक्षात भगवान की लीला के दर्शन होते हैं, जहां न विकार है न वासना, जहां न हिसा है न छल कपट।"

yodq'k dkM

इस बार सीता ने इतना अधिक आग्रह किया कि राम उसे टाल न सके। उन्होंने लक्ष्मण को बुलाया और कहा, "लक्ष्मण, महारानी सीता बहुत दिनों से वाल्मीकि ऋषि के आश्रम में रहने का आग्रह कर रही हैं। तुम वहां जाकर सुचारु व्यवस्था कर आओ। तत्पश्चात सीता को सुविधापूर्वक वहां लिवा ले जाना।"

लक्ष्मण वाल्मीकि–आश्रम गये और वाल्मीकि ऋषि से सीता के वहां रहने की अनुमति मांगी। वहां निवास करने वाले सब ऋषियों और ऋषिपत्नियों ने इस पर अतीव हर्ष प्रकट किया। जब ऋषिपत्नियों को यह ज्ञात हुआ कि सीता गर्भवती हैं, तो उन्होंने कहा, "राम किसी प्रकार की चिन्ता न करें, हम यहां सब व्यवस्था कर लेंगी।"

अयोध्या वापिस आकर लक्ष्मण ने राम को सब समाचार सुनाये। तब राम ने लक्ष्मण द्वारा सीता को प्रेरणा की कि वह वाल्मीकि आश्रम में कुछ दिन विहार करके शीघ्र अयोध्या लौट आये।

लक्ष्मण को सम्बोधन करते हुए राम बोले, "गंगातीर पर उन आश्रमों में विहार कराकर तुम शीघ्र सीता सहित यहां आना ।"

राम की आज्ञानुसार लक्ष्मण एक सुन्दर रथ में सीता को बिठाकर वाल्मीकि–आश्रम को रवाना हुए। कई दिन की यात्रा के बाद जब आश्रम के निकट पहुँचे तो आश्रम वासियों ने रथ को पहिचान लिया। ऋषियों तथा ऋषि पत्नियों ने समुचित सम्मान के साथ सीता व लक्ष्मण का स्वागत किया।

आश्रम वासियों ने पहले से ही सीता के लिये एक उत्तम पर्णशाला निर्माण कर रखी थी। सीता ने उसी में निवास किया। सीता ने पुनः अयोध्या जाना स्वीकार नहीं किया।

लक्ष्मण हताश अकेले अयोध्या को लौट गये।

राम को जब यह ज्ञात हुआ कि सीता ने सदा के लिये अयोध्या का परित्याग कर दिया है तो उन्हें बड़ी वेदना हुई।

इसके बाद राम सीता के वियोग में सदा विकल रहने लगे और ऐसा होना सर्वथा स्वाभाविक था। जिस सीता ने वनवास में भी राम का साथ नहीं छोड़ा था, जिस सीता के लिये राम ने लंका का विध्वंस किया, वही सीता अब कभी भी अयोध्या आकर राम के साथ नहीं रहेंगी, यह कम आधात की बात नहीं थी ।

राम अपने वचन के पूरे थे। वह सार्वजनिक रूप से भरत को अपना युवराज घोषित कर चुके थे। अब वह अपने वचन से कैसे फिर सकते थे? फिर राम के प्रति भरत की वफादारी भी कुछ कम नहीं थी। राम के प्रति सीता के हृदय में जितना स्नेह था, उससे भी कहीं अधिक स्नेह राम के प्रति भरत के हृदय में था। राम दोनों ओर समान रूप से प्रेम के बन्धन में बंधे थे ।

प्रेम और वचन की इस द्विविधा ने राम के मानस में दुःख का एक सागर उमड़ा दिया। जिस राम ने सीता के साथ रहकर संसार की बड़ी–से–बड़ी आपत्ति का सहर्ष और समुस्कान मुकाबिला किया था, वही राम अब सीता के बिना जलविहीन मीन की तरह रात–दिन खिन्न और व्याकुल रहने लगे।

यथासमय वाल्मीकि–आश्रम में सीता ने दो जुड़वां पुत्र–रत्नों को जन्म दिया। जिनका नाम क्रमशः कुश और लव रखा गया। छः वर्ष की आयु में दोनों कुमारों का यज्ञोपवीत–संस्कार हुआ और वे यथाविधि आर्य मर्यादा के अनुसार शिक्षा पाने लगे। दोनों कुमारों ने वेदोपवेदों की शिक्षा प्राप्त की और किशोरावस्था को प्राप्त होने पर उन्होंने शस्त्रासत्र

का यथावत अभ्यास किया। इस प्रकार कुश और लव सुन्दर यौवनावस्था को प्राप्त हुए। दोनों कुमारों की आकृति और उनका रूप–लावण्य सर्वेशः राम से मिलता–जुलता था।

उधर, महाराज राम ने अपने तीनों बन्धुओं और ऋषिकोटि के मन्त्रियों के सहयोग से धर्मपूर्वक राज्य–कार्य किया और ऐसी सुन्दर भ्रन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था की, कि भारत और लंकादि द्वीपों के सभी राजा लोग निष्ठापूर्वक अयोध्या की माण्डलिकता के सूत्र में पिरो लिये गये।

उपयुक्त अवसर पर राम ने अश्वमेध यज्ञ किया, जिसमें सभी माण्डलिक राजे तथा ऋषिजन सम्मिलित हुए। यज्ञ के दिनों में एक दिन ऋषि वाल्मीकि भी सीता और कुश–लव सहित अयोध्या आये।

वाल्मीकि ऋषि राम के अश्वमेध यज्ञ से पूर्व तक का रामायण महाकाव्य लिख चुके थे। ऋषि के आदेश पर कुश और लव ने बड़े सुन्दर ढंग से रामायण के कुछ सर्गों का गान किया। कुमारों का स्वर अलोकिक था और गाने की विधि इतनी सुन्दर थी कि उनका गाना सुनकर सारी सभा मन्त्रमुग्ध–सी हो गई।

कुश और लव ने जब उस प्रसंग को गाकर सुनाया , जब सीता अयोध्या छोड़कर वाल्मीकि–आश्रम को जा रही हैं। वहाँ उपस्थितों के अतिरिक्त राम और सीता का भी हृदय भर आया। सीता का नारी–हृदय उस घड़ी के उमड़ते हुए विषाद के वेग से फट पड़ा और महारानी का तत्क्षण देहावसान हो गया ।

अश्व मेध का उल्लासपूर्णो वातावरण विषादाच्छन्न हो गया पर यज्ञ न तो स्थगित किया जा सकता था, न अपूर्ण ही छोड़ा जा सकता था।

विधान के अनुसार यज्ञ की पूर्णाहुति के दिन सम्राट के वामांग में महारानी का वेदी पर आसीन होना अनिवार्य होता है। महारानी सीता

परलोक सिधार चुकी थीं। शास्त्रमर्यादा का पालन भी आवश्यक था। विधान शास्त्रियों की व्यवस्था के अनुसार सीता की सोने की प्रतिमा राम के वामांग में स्थापित की गयी और अश्वमेध यज्ञ में पूर्णाहुति दी गयी। माण्डलिक राजाओं ने महाराज राम को श्रद्धापूर्वक भेंट अर्पित कीं और अयोध्या साम्राज्य के ताज के प्रति सदा वफादार रहने की शपथ ग्रहण की।

राम स्वभाव और संस्कार से ऋषि तथा परम योगी थे। उन्होंने प्रत्येक क्षेत्र और प्रत्येक अवस्था में पूर्णतया अनासक्त और सर्वथा निर्लिप्त रहते हुए कर्त्तव्य का निर्वहन तथा जीवनयापन किया था। संसार की घटनाओं ने उनके पावन हृदय को अतिशय विरक्त बना दिया था। सीता के सहसा देहावसान की घटना ने उनकी विरक्तता पर घृताहुति का काम किया। उन्हें रह–रह कर सीता के जीवन की दुःखद स्मृतियां सतानें लगीं। कुछ मास तक उन्हें ऐसा लगा मानों उनके स्वभाव संस्कार और उनकी आत्म–साधनाओं ने उनका साथ छोड़ दिया है।

अपने सम्पूर्ण आत्मसंबल को समेट कर अंत में राम ने विषाद की अवस्था पर काबू पाया और निर्णय किया कि साम्राज्य का ताज भरत के सिर पर पहिनाकर हिमालय पर निवास करेंगे।

भरत की आध्यात्मिक स्थिति तो राम से भी ऊंची थी। भरत ने साम्राज्य के सिहासन पर बैठने से साफ इंकार कर दिया और कहा, "भरत ने न तो राम के वन जाने पर राम के अधिकार का अपहरण किया था और न वह अब सीता के ज्येष्ठ पुत्र के अधिकार का अपहरण करेगा।"

सबके प्रबल आग्रह करने पर भी जब भरत सम्राट बनने को तैयार न हुए, तो भरत के प्रस्तावानुसार और सर्व सम्मति से, ऋशि मुनियों के अनुसरण से कुश को राम के स्थान पर कोशल का राज्य सौंपा गया और लव को उत्तर कोसल का राजा बनाया गया।

कुश और लव के राज्याभिषेक के उपरान्त राम ने अश्व–मेध (सर्वे–त्याग) यज्ञ किया। तत्पश्चात सब नगर निवासियों से तथा राज–परिवार से विदा ली।

राम को जाते देख नगर वासियों का विशाल जन–समूह राम के पीछे हो लिया। सरयू नदी के किनारे पहुंचकर राम ने सबको समझा बुझा कर अयोध्या वापिस लौटा दिया।

उसके बाद वह स्वयं आत्म–साधना के लिये हिमालय की ओर चल पड़े। भरत, लक्ष्मण और शत्रुध्न भी साथ हो लिये। चारों भाई समवयस्क थे। चारों ही आयु के चतुर्थ सावन में थे। चारों सदा साथ साथ रहे थे। भला अब जीवन के अन्तिम छोर में वे वियुक्त कैसे हो सकते थे?

चारों भाई काषाय वस्त्र धारण कर हिमालय के एक एकान्त, शान्त, सुन्दर, सुरम्य और निर्जन वन में निवास करते हुए, ब्राह्मी स्थिति में ब्रह्मलीन रहने लंगे। आत्मसाधना पूर्ण हुई ओर चारों ने समाधि की अवस्था में एक साथ अपने–अपने नश्वर शरीर का परित्याग कर परम पद की प्राप्ति की। चारों का जन्म भी साथ–साथ हुआ था और चारों ने इस लोक से प्रस्थान भी साथ–साथ ही किया।

इस प्रकार राम का जीवन चरित्र सम्पूर्ण हुआ।

!! t ; Jh jke !!

अयोध्या के आर्यवृत राजा (श्री राम वंशावली)

1. मनु	33. रोहित	65. कुश
2. इक्ष्वाकु	34. हरित	66. अतिथि
3. शशाद्	35. चंचु (चंप)	67. निषध
4. ककुत्स्थ	36. विजय	68. नल
5. अनेनस	37. रुरुक	69. नभस
6. पृथु	38. वृक	70. पुण्डरीक
7. विश्वगाश्व	39. बाहु	71. क्षेमधन्वन्
8. आर्द्र	40. सगर	72. देवानीक
9. युवनाश्व	41. असमन्जस	73. अहीनगु
10. श्राव्यस्त	42. अंशुमत्	74. पारिपात्र
11. वृहद्श्व	43. दिलीप	75. दल
12. कुवलयाश्व	44. भगीरथ	76. शल
13. द्रडाश्व	45. श्रुत	77. उकथ
14. प्रमोद	46. नाभाग	78. वज्रनाभ
15. हयेश्व	47. अम्बरीप	79. शंखन
16. निकुम्भ	48. सिंधुद्दीप	80. व्युपिताश्व
17. संहताश्व	49. अयुतायुस्	81. विश्वसह
18. कृशाश्व	50. ऋतुपर्ण	82. हिरण्यनाभ
19. प्रसेनजित	51. सर्वकाम	83. पुष्य
20. युवनाश्व	52. सुदास	84. ध्रुवसन्धि
21. मान्धात्	53. कल्माषपाद	85. सुदर्शन
22. पुरुकुत्स	54. अश्मक	86. अग्निवर्ण
*	55. मूलक	87. शीघ्र
23. त्रसदस्यु	56. शतरथ	88. मारू
24. संभूत	57. वृद्धशर्मन्	89. अथुश्रुत
25. अनरण्य	58. विश्वसह्	90. सुसन्धि
26. पृषदस्व	59. दिलीप	91. अमर्ष
27. हर्यश्व	60. दीर्घबाहु	92. महाश्वत
28. वसुमनस्	61. रघु	93. विश्रुतवत्
29. तृधन्वन्	62. अज	
30. त्रेयारुण	63. द्शरथ	

31. त्रिशंकु 32. हरिश्चन्द्र	64. रामचन्द्र	**94.** वृहद्वल

वृहद्वल को महाभारत के युद्ध मे **अभिमन्यु** ने मारा था जिसका **महाभारत** ग्रंथ के **द्रोणपर्व** मे वर्णन दिया गया है।

महाभारत युद्ध के बाद के सूर्यवंशी वंशी राजा

1. सहतूषय	16. अमित्रजित
2. उरुक्षय	17. बृहद्रज
3. वत्सद्रोह	18. धर्म
4. प्रतिव्योंम	19. कृतज्ञ
5. दिवाकर	20. व्रात
6. सहदेव	21. रणाजय
7. ध्रुवाश्व	22. संजय
8. भानुरथ	23. शाक्य
9. प्रतीतास्व	24. क्रुद्धोद्वन
10. सुप्रतीप	25. सिद्धार्थ
11. मरुदेव	26. राहुल
12. सुनक्षत्र	27. प्रसेनजित
13. किन्नरआश्व	28. क्षुद्रक
14. अंतरिक्ष	29. कुलक सुरथ
15. सुषेण	30. सुमित्र

चौथी शताब्दी ईसा पूर्व अयोध्या राजवंश के अंतिम राजा सुमित्र थे।

ॐ